प्रसार दूत

कृषि विज्ञान की अग्रणी पत्रिका

सितम्बर 2020

कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)

कृषि प्रौद्योगिकी आकलन एवं स्थानान्तरण केन्द्र
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली–110012

संपादकीय

साथियो, बारिश का मौसम अवसान पर है। यह माह कृषि के लिए रोगों, कीड़े–मकोड़ों और खरपतवार के लिहाज से महत्वपूर्ण है क्योंकि यह मौसम इनकी बढ़वार के लिए उपयुक्त होता है इसलिए खेतों की नियमित निगरानी आवश्यक है।

कीट–रोग और खतपतवारों आदि, जो भी जीव हमारी फसल को नुकसान पहुँचाते हैं, उन्हें "नाशीजीव" नाम दिया गया है। अध्ययन के लिए कीटों, रोगों और खरपतवारों को पृथक किया जा सकता है, परंतु फसल सुरक्षा के लिहाज से इन्हें संयुक्त रूप से देखना चाहिए। इन्हें पूरी तरह समाप्त नहीं किया जा सकता, क्योंकि कुदरत ने पारिस्थितिकी तंत्र में इनकी भी एक भूमिकाएँ तय की है। हाँ, हम इनकी तादाद जरूर कम कर सकते हैं, ताकि नुकसान कम से कम हो। समेकित नाशीजीव नियंत्रण का सिद्धांत यह है कि जब नाशीजीव प्रकोप इतनी अधिक मात्रा में हो कि उससे खासा आर्थिक नुकसान उठाना पड़े, तभी इनके नियंत्रण उपाय व दवा का प्रयोग किया जाना चाहिए। यदि नुकसान कम हो तो दवाओं का इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए। इस आर्थिक नुकसान की सीमा को "इकोनॉमिक थ्रेसहोल्ड लेवल" कहते हैं। नियमित निगरानी से शुरूआती अवस्था में ही नाशीजीवों की पहचान हो जाती है। कोई दवा एक विशिष्ट नाशीजीव के लिए ही प्रभावी होती है क्योंकि प्रत्येक प्राणी का जीवन चक्र, प्रकोप का ढंग अलग–अलग होता है। निगरानी और पहचान इसलिए आवश्यक है, कि सटीक दवा का चयन किया जा सके। प्रकोप को उसके लक्षणों एवं कारकों को देखकर पहचाना जा सकता है, इसलिए नियमित निगरानी अवश्य करें।

नया समाचार यह है कि सरकार ने किसान उत्पादक संगठनों के गठन के लिए अनेक रियायतों की घोषणा की है। हम हमेशा से किसानों को संगठित होकर कार्य करने का आह्वान करते रहे हैं। वैसे तो हमारे देश में सहकारिता आंदोलन का लंबा इतिहास रहा है। सत्तर के दशक में सामूहिक खेती पर प्रयोग भी हुए हैं जिसमें किसानों ने मेड़ें तोड़ दी और पूरा गाँव एक चक पर खेती करने लगा। तथापि यह मॉडल हमारे देश में सफल नहीं हुआ, क्योंकि सामूहिकता की मूल भावना कहीं खो गई थी। कालांतर में बेहतर मॉडल आए, जो अधिक व्यावहारिक थे, और उनमें व्यावसायिक हितों पर भी प्राथमिकता दी गई। इसी तरह क्रमशः सुधार होते–होते अब एक नया और प्रभावी ढांचा तैयार हुआ है जिसे "कृषक उत्पादक कंपनी" या एफ.पी.ओ. कहते हैं। "कृषक उत्पादक कंपनी" एक सामान्य कंपनी की तरह ही होती है, लेकिन उसमें सहकारी–संस्था की अच्छी–अच्छी बातों को जोड़ा गया है। इसमें सहकारी संस्थाओं जैसी लोकतांत्रिक व्यवस्था है, वहीं एक कंपनी जैसा अनुशासन और व्यावसायिकता भी शामिल है।

किसानों का कल्याण तभी हो सकता है जब बाजार किसानों के पक्ष में हो और उत्पादन का लाभकारी मूल्य मिले। इसे कार्यान्वित करने में तमाम सरकारें विफल रही हैं। समय की मांग है कि विपणन व्यवस्था किसान अपने हाथों में ले। लेकिन बाजार और उसके तौर–तरीके बहुत उलझे हुए हैं। इसे समझना और इसमें पैठ बनाना आम किसान के लिए संभव नहीं क्योंकि अव्वल तो उसके पास इतना समय नहीं है, दूसरे वह इतना सक्षम, शिक्षित और साधन संपन्न नहीं है कि इस चक्रव्यूह को तोड़ सके। इसे भेदने का एकमात्र तरीका संगठित होना ही नजर आता है।

सरकार द्वारा दिया जाने वाला यह प्रोत्साहन किसानों को आत्मनिर्भर बनाने में मदद करेगा। इस योजना की उल्लेखनीय बात यह कि मुख्य फोकस किसानों के क्षमतावर्धन पर है। किसानों को अपनी व्यवस्था बनाने, संभालने

तक कुछ प्रोत्साहक संस्थाएँ किसानों का मार्गदर्शन करेंगी, जिनके लिए उन्हें धन मिलेगा। यह प्रोत्साहक संस्थाएँ उन्हें संगठित होने, कंपनी के तौर पर योजनाबद्ध कारोबार जमाने, प्रशिक्षण दिलाने और आवश्यक ऋण जुटाने में भी मदद करेंगी। लेकिन यह मदद शुरूआती 3 से लेकर 5 वर्षों तक ही रहेगा, और जब एक बार कंपनी चल निकलेगी, तो प्रोत्साहक संस्थाओं को सहयोग नहीं मिलेगा।

इस कार्यक्रम की सफलता तभी होगी जब पहल किसानों की ओर से होगी और वे पारंपरिक तरीकों को छोड़कर नए तरीकों को अपनाने के लिए सक्रिय रूप से प्रयास करेंगे। एक संस्था बनाना आसान है, परंतु इसे सफलता के साथ पेशेवर रूख अपनाकर चलाने का विशेष महत्व है। देश की मुख्यधारा में शामिल होने के लिए किसानों को पेशेवर बनना ही पड़ेगा।

हर बार की तरह प्रसार दूत के इस अंक में भी समसामयिक विषयों और कृषि कार्यों पर आधारित आलेख शामिल किए गए हैं, जैसे रबी हेतु भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित गेहूं, चना, सरसों तथा मसूर की उन्नत किस्में, राया, सरसों की उन्नत खेती, अगेती गाजर की सफल खेती, ग्रीनहाउस में सब्जी की व्यवसायिक खेती, उच्च आय हेतु गुलाब की उन्नत खेती, वैज्ञानिक विधि से मधुमक्खी पालन एवं प्रबंधन, किसानों के लिए रोजगार का साधन : मशरूम उत्पादन, मृदा स्वास्थ, फसल उपज एवं लाभ के लिए संतुलित उर्वरकों का उपयोग, सीमान्त कृषकों की अधिक आय हेतु बागवानी आधारित समन्वित कृषि प्रणाली मॉडल, सर्दी के मौसम में दुधारू पशुओं की उचित देखभाल कैसे करें। आपको यह अंक कैसा लगा, अवश्य बताएँ।

संपादक

सितम्बर 2020

प्रसार दूत

वर्ष 25 | 2020 | अंक-3

संरक्षक

डॉ. अशोक कुमार सिंह

निदेशक

डॉ. वी. के. सिंह

कार्यवाहक संयुक्त निदेशक (प्रसार)

प्रधान सम्पादक

डॉ. जे.पी.एस. डबास

सम्पादक

डॉ. एन.वी कुंभारे

सम्पादक मंडल

डॉ. वाई. वी. सिंह

डॉ. अमित गोस्वामी

श्री के. एस. यादव

डॉ. हरीश कुमार

डॉ. वाई. पी. सिंह

श्री आनन्द विजय दुबे

तकनीकी सहयोग

श्री विजय सिंह जाटव

श्री लक्खी राम मीणा

श्री राजेश सिंह

शुल्क और लेख भेजने एवं पत्रिका मंगाने का पता

कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)

भा.कृ.अ.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान

नई दिल्ली–110012

फोनः 011–25841039

पूसा एग्रीकॉमः 1800118989 (टोल फ्री)

ई–मेंलः incharge_atic@iari.res.in

वेबसाइटः www.iari.res.in

विषय सूची | पृष्ठ संख्या

सम्पादकीय

1. रबी हेतु भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित गेहूं, चना, सरसों तथा मसूर की उन्नत किस्में 1
2. राया सरसों की उन्नत खेती 8
3. अगेती गाजर की सफल खेती 13
4. ग्रीनहाउस में सब्जी की व्यवसायिक खेती 15
5. उच्च आय हेतु गुलाब की उन्नत खेती 19
6. वैज्ञानिक विधि से मधुमक्खी पालन एवं प्रबंधन 26
6. किसानों के लिए रोजगार का साधन : मशरूम उत्पादन 31
7. मृदा स्वास्थ्य, फसल उपज एवं लाभ के लिए संतुलित उर्वरकों का उपयोग 40
8. सीमान्त कृषकों की अधिक आय हेतु बागवानी आधारित समन्वित कृषि प्रणाली मॉडल 42
9. सर्दी के मौसम में दुधारू पशुओं की उचित देखभाल कैसे करें ? 47

वार्षिक शुल्क ₹ 80/– मनीआर्डर द्वारा | **प्रति मूल्य ₹ 20/–**

रबी हेतु भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित गेहूँ चना, सरसों तथा मसूर की उन्नत किस्में

राम कुमार शर्मा, देवेंद्र कुमार यादव, ज्ञान प्रकाश मिश्र, वेंकटरमन हेगड़े एवं हर्ष कुमार दीक्षित
आनुवंशिकी संभाग, भा.कृ.अनु.प–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012

जैसा कि हम जानते हैं कि भारत एक कृषि प्रधान देश है तथा इसकी लगभग 70% जनसंख्या कृषि पर आधारित है। भारत के कुल सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में लगभग 16–18% योगदान कृषि का है। भारत में मुख्य रूप से तीन प्रकार (खरीफ, रबी और जायद) की फसल ऋतु प्रमुख है। खरीफ ऋतु की फसल मुख्य रूप से वर्षा पर आधारित होती है तथा इन फसलों की अच्छी बढ़वार के लिए अधिक तापमान और आर्द्रता की आवश्यकता होती है। इन फसलों की बुआई का समय जून से जुलाई का महीना होता है, जबकि कटाई सितम्बर से अक्टूबर तक की जाती है। इनमें प्रमुख फसलें हैं – धान, मक्का, सोयाबीन, बाजरा, ज्वार, मूंग, लोबिया, आदि। रबी फसलें मुख्य रूप से शीत ऋतु की फसल होती है, जिन्हें ठंडे जलवायु की आवश्यकता होती है। इन फसलों की बुआई अक्टूबर से दिसंबर के बीच की जाती है, जबकि कटाई फरवरी से अप्रैल महीने में की जाती है। इन फसलों को कम तापमान व कम पानी की आवश्यकता होती है। रबी की मुख्य फसले हैं, गेहूँ, चना, मसूर, सरसों, राई, आलू आदि। जायद की फसलों की बुआई प्रमुख रूप से फरवरी से मार्च महीने में की जाती है, तथा इसकी कटाई अप्रैल से मई के बीच की जाती है। इन फसलों में कम–नमी की स्थित सहन करने की क्षमता होती है, तथा इन फसलों को कुछ अंतराल पर सिंचाई की भी आवश्यकता पड़ती है। जायद की फसलों में तरबूज, खरबूजा, लौकी, ककड़ी, तोरई, मूंग, खीरा, मिर्च, पत्तेदार सब्जियां आदि प्रमुख हैं।

भारत के एक प्रमुख कृषि अनुसंधान संस्थान, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (पूसा संस्थान) ने देश को खाद्य और पोषण सुरक्षा प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। पूसा संस्थान 1960 के दशक में हरित क्रांति' को साकार करने वाला एक मुख्य संस्थान था, जिसने विभिन्न फसलों में उच्च पैदावार देने वाली कई महत्वपूर्ण फसल की किस्मों का विकास किया, जिससे न सिर्फ किसानों की आय में वृद्धि हुई बल्कि निर्यात से भी देश को विदेशी मुद्रा अर्जित हुयी। विभिन्न अजैविक तथा जैविक तनावों और उच्च पोषण गुणवत्ता वाली किस्मों की तत्काल आवश्यकता के परिप्रेक्ष्य में पूसा संस्थान के आनुवंशिकी संभाग ने गेहूं, जौ, चना, मसूर तथा सरसों में विगत कुछ वर्षों में कुल 39 उन्नत किस्मों का विकास किया है। इस संस्थान द्वारा विकसित फसलों की किस्में उच्च पैदावार के साथ ही साथ विभिन्न रोगों और अजैविक कारक जैसे कम–नमी और उच्च तापमान के लिये प्रतिरोधी भी हैं। यही नहीं, इनमें से कुछ किस्मों को वर्धित लौह, जस्ता, और प्रोविटामिन–ए के साथ भी विकसित किया गया है। ये उन्नत किस्में हमें पर्याप्त मात्रा में पौष्टिक आहार प्रदान करने में पूर्णतया सक्षम हैं। इस संस्थान द्वारा विकसित किस्मों के बीजों की पूरे देश से आने वाली मांग क्षेत्रफल और राष्ट्रीय अन्न भंडार में योगदान की दृष्टि से उनकी लोकप्रियता का प्रमाण है। इस आलेख में इस संस्थान द्वारा विकसित गेहूं, जौ, सरसों, चना तथा मसूर की उच्च उत्पादकता वाली नवीनतम किस्मों का विस्तार पूर्वक विवरण दिया गया है।

पश्चिमी एवं पूर्वी मैदानी क्षेत्रों के लिए अनुमोदित गेहूँ की प्रजातियाँ

एच.डी. 3086 (पूसा गौतमी): गेहूं की एक अतिप्रचलित तथा व्यापक क्षेत्र के लिए अनुकूल एवं अधिक उपज देने वाली किस्म है। इसकी औसत उपज 54.5 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है, जबकि अधिकतम उपज क्षमता 71.1 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है। यह किस्म देश के उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्रों एवं उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों में समय पर बुवाई तथा सिंचित अवस्था हेतु अधिसूचित है। इसमें पीले रतुआ रोग के लिए प्रतिरोधक क्षमता है, साथ ही साथ यह किस्म पर्ण ब्लाइट रोग के लिए भी अवरोधी है।

एच. डी. 2967: गेहूं की एक अतिप्रचलित तथा व्यापक क्षेत्र के लिए अनुकूल एवं अधिक उपज देने वाली किस्म

है। इसकी औसत उपज 44.5 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है, जबकि अधिकतम उपज क्षमता 60.3 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है। यह किस्म देश के उत्तर पश्चिमी एवं उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्रों में समय से बुवाई तथा सिंचित अवस्था हेतु अधिसूचित है। इसमें पीले और भूरे रतुआ रोग के लिए प्रतिरोधक क्षमता है, साथ ही साथ पर्ण ब्लाइट रोग के लिए भी अवरोधक क्षमता है। यह किस्म उत्तम ग्लू–1 स्कोर (10/10), अधिक प्रोटीन तथा आकर्षक गोल दाने होने के कारण चपाती एवं ब्रेड बनाने के लिए उपयुक्त है।

एच.आई. 1612: सिमित सिंचाई अवस्था में अधिक उपज देने वाली एक नवीनतम गेहूं की किस्म है। इस किस्म की औसत उपज 37.8 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है, जबकि अधिकतम उपज क्षमता 50.5 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है। यह किस्म देश के उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र में सीमित सिंचाई अवस्था हेतु अधिसूचित है। यह किस्म पीले और भूरे रतुआ रोग, करनाल बंट, पर्ण ब्लाइट, पाउडरी मिल्ड्यू, फ्लैग स्मट और लूज स्मट, फ्यूजेरियम हेड ब्लाइट जैसी बिमारियों के के लिए प्रौढ़ अवस्था में अत्याधिक अवरोधी है। यह किस्म एक तथा दो सिंचाई अवस्था के लिए उत्तम है। इसमें अधिक प्रोटीन (11.5%), अधिक लौह तत्व (41.5 पीपीएम) एवं जस्ता (35.5 पीपीएम) भी है। यह किस्म चपाती तथा बिस्कुट बनाने के लिए उपयुक्त है।

एच.डी. 3271: गेहूं की किस्म के अनुमोदित क्षेत्र उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, राजस्थान (कोटा और उदयपुर संभागों को छोड़कर), पश्चिमी उत्तर प्रदेश (झांसी डिवीजन को छोड़कर), जम्मू और कश्मीर के जम्मू और कठुआ जिले, हिमाचल प्रदेश का ऊना जिला और पांवटा घाटी तथा उत्तराखंड का तराई क्षेत्र,, उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र (पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल, ओडिशा, असम और अन्य उत्तर पूर्वी राज्यों के मैदान) हैं। इस किस्म के उत्पादन की उचित स्थिति देर से बुवाई तथा सिंचित अवस्था है। यह किस्म लगभग 36.6 कुन्तल प्रति हेक्टेयर (उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र) और 28.1 कुन्तल प्रति हेक्टेयर (उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र) तक औसत उपज देती है जबकि इसकी उपज क्षमता 59.2 कुन्तल प्रति हेक्टेयर (उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र) और 33.1 कुन्तल प्रति हेक्टेयर (उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र) है। यह किस्म लगभग 104 दिन (उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र) और 98 दिन (उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र) में परिपक्व हो जाती है। यह पीले और भूरे रतुए रोग हेतु प्रतिरोधी है, तथा चपाती बनाने के लिए उत्तम है।

पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों के लिए अनुमोदित गेहूँ की प्रजातियाँ

एच.डी. 3226 (पूसा यशस्वी): एक अत्यधिक उपज देने वाली गेहूँ की नवीनतम किस्म है। इस किस्म की औसत उपज 57.5 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है, जबकि अधिकतम उपज क्षमता 79.6 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है। यह किस्म देश के उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र में समय पर बुवाई और सिंचित अवस्था के लिए अधिसूचित है। यह किस्म तीनों प्रकार के रतुआ रोग, करनाल बंट, पाउडरी मिल्ड्यू, फ्लैग स्मट और फूट राट जैसी बिमारियों के लिए अत्याधिक अवरोधी है। यह किस्म गुणवत्ता मानकों पर भी प्रचलित किस्मों की तुलना में सर्वश्रेष्ठ है। इसमें अधिक प्रोटीन (13%), गीला ग्लूटेन (30.85%) एवं सूखा ग्लूटेन (10.10%) उत्तम ग्लू–1 स्कोर (10) होने के कारण ब्रेड और चपाती दोनों के लिए उपयुक्त है।

एच.डी.सी.एस.डब्लू. 18: संरक्षित खेती के लिए तैयार की गयी देश की पहली गेहूं की किस्म है। यह राज्य किस्म विमोचन कमेटी द्वारा विमोचित है तथा राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में अगेती बुवाई और सिंचित अवस्था के लिए अधिसूचित है। इस किस्म की औसत उपज 62.8 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है, तथा अधिकतम उपज क्षमता 70.0 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है। यह बुवाई के समय अधिक तापमान (जल्द बुवाई) तथा भूरे रतुआ रोग के लिए प्रतिरोधक होने के साथ साथ करनाल बंट के लिए भी अवरोधी है।

एच.डी. 3117: संरक्षित खेती तथा पारंपरिक जुताई के लिए तैयार की गयी किस्म है। इसे राज्य किस्म विमोचन कमेटी द्वारा विमोचित है तथा राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में पछेती बुवाई और सिंचित अवस्था के लिए अधिसूचित है। इस किस्म की पारम्परिक जुताई में औसत उपज 47.9 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है। यह पीले तथा भूरे रतुआ रोग के लिए प्रतिरोधक होने के साथ साथ करनाल बंट के लिए भी अवरोधी है। इसमें प्रोटीन की मात्रा 11.7% है।

एच.डी. 3237: सिमित सिंचाई अवस्था में अधिक उपज देने वाली नवीनतम गेहूं की किस्म है। इस किस्म की औसत उपज 48.4 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है। यह किस्म देश

के उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र में सीमित सिंचाई अवस्था के लिए अधिसूचित है। यह पीले और भूरे रतुआ रोग हेतु अत्याधिक अवरोधी है, जबकि करनाल बंट, पाउडरी मिल्ड्यू, फ्लैग स्मट और फूट राट जैसी बिमारियों के लिए अवरोधी है। यह किस्म शुन्य या एक सिंचाई अवस्था के लिए उत्तम है। इसमें उच्च ग्लू–1 स्कोर तथा उच्च प्रोटीन होने के कारण ब्रेड बनाने के लिए उपयुक्त है।

एच.आई. 1620: सिमित सिंचाई अवस्था में अधिक उपज देने वाली गेहूं की किस्म है। इस किस्म की औसत उपज 49.1 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है, जबकि अधिकतम उपज क्षमता 61.8 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है। यह किस्म देश के उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र में सीमित सिंचाई अवस्था के लिए अधिसूचित है। यह पीले और भूरे रतुआ रोग के लिए अत्याधिक अवरोधी है, जबकि करनाल बंट, पाउडरी मिल्ड्यू, फ्लैग स्मट और लूज स्मट, फ्यूजेरियम हेड ब्लाइट जैसी बिमारियों के लिए अवरोधी है। यह किस्म एक तथा दो सिंचाई अवस्था के लिए उत्तम है। इसमें उत्तम चपाती क्वालिटी (7.52), उच्च ग्लू–1 स्कोर (10/10) और प्रोटीन (11.9%) होने के कारण बिस्कुट लिए भी उपयुक्त है।

एच.आई. 1628: गेहूं की किस्म का विमोचन केंद्रीय किस्म विमोचन समिति द्वारा किया गया है। इस किस्म का अनुमोदित क्षेत्र उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, राजस्थान (कोटा और उदयपुर संभागों को छोड़कर), पश्चिमी उत्तर प्रदेश (झांसी डिवीजन को छोड़कर), जम्मू और कश्मीर के जम्मू और कठुआ जिले, हिमाचल प्रदेश का ऊना जिला और पांवटा घाटी तथा उत्तराखंड का तराई क्षेत्र, हैं। इसके उत्पादन की उचित स्थिति समय पर बुवाई तथा सीमित सिंचित अवस्था है। यह किस्म लगभग 50.4 कुन्तल प्रति हेक्टेयर औसत उपज देती है, जबकि इसकी उपज क्षमता 65.1 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है। यह लगभग 147 दिनों में परिपक्व हो जाती है, तथा पीले एवं भूरे रतुए रोग के लिए प्रतिरोधी है। इस किस्म में उत्कृष्ट चपाती (मूल्यांक 7.6), ब्रेड गुणवत्ता (मूल्यांक 7.6), उच्च बिस्किट प्रसार कारक (8.3), उच्च प्रोटीन (11.0%) है, तथा यह किस्म कम–नमी एवं उच्च–तापमान के प्रति सहिष्णु भी है।

पूर्वी मैदानी क्षेत्रों के लिए अनुमोदित गेहूँ की प्रजातियाँ

एच.डी. 3249: यह किस्म केंद्रीय किस्म विमोचन समिति द्वारा विमोचित है, तथा इसका अनुमोदित क्षेत्र उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र (पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल (पहाड़ियों को छोड़कर), ओडिशा, असम और उत्तर पूर्वी राज्यों के मैदान) हैं। इसके उत्पादन की उचित स्थिति, समय से बुवाई तथा सिंचित अवस्था है। यह किस्म लगभग 48.8 कुन्तल प्रति हेक्टेयर तक औसत उपज देती है, जबकि इसकी उपज क्षमता 65.7 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है। यह किस्म लगभग 122 दिन में परिपक्व हो जाती है। यह किस्म झौंका, पीले और भूरे रतुए रोग के लिए प्रतिरोधी है, जबकि उच्च–तापमान के प्रति भी सहनशील है। इसमें उत्कृष्ट चपाती गुणवत्ता (मूल्यांक 7.8), उच्च प्रोटीन (10. 7%), लौह (42.5 पीपीएम) और जस्ता (27.0 पीपीएम) है।

एच. डी. 3118 (पूसा वत्सला): गेहूं की एक उच्च उपज देने वाली किस्म है। यह किस्म लगभग 39.5 कुन्तल प्रति हेक्टेयर औसत उपज देती है, जबकि इसकी उपज क्षमता 66.4 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है। यह किस्म देश के उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र में पछेती बुवाई तथा सिंचित अवस्था के लिए अधिसूचित है। यह पीले और भूरे रतुआ रोग हेतु प्रतिरोधक है, तथा फोलियर ब्लाइट एवं फुट राट के लिए भी अवरोधी है। इसमें वांछित ग्लू–1 स्कोर, अधिक ब्रेड लोफ फैलाव, ब्रेड क्वालिटी स्कोर, प्रोटीन मात्रा, आकर्षक दाने के साथ ब्रेड बनाने हेतु समस्त गुण मौजूद हैं।

एच.डी. 3171: गेहूं की बरानी अवस्था में अधिक उपज देने वाली किस्म है। यह किस्म लगभग 28.1 कुन्तल प्रति हेक्टेयर औसत उपज देती है, जबकि इसकी उपज क्षमता 50.5 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है। यह किस्म देश के उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र में सीमित सिंचाई अवस्था के लिए अधिसूचित है। यह एक सूक्ष्म पोषक तत्वों से भरपूर किस्म है, जिसमें उच्च लौह) 47.1 पीपीएम) और जिंक (45 पीपीएम) है। यह पीले भूरे एवं काले रतुआ रोग के लिए अत्याधिक अवरोधी है ।

एच.आई. 1621: गेहूं की किस्म का विमोचन केंद्रीय किस्म विमोचन समिति द्वारा किया गया है। इस किस्म के अनुमोदित क्षेत्र उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र पंजाब, हरियाणा,

दिल्ली, राजस्थान (कोटा और उदयपुर संभागों को छोड़कर), पश्चिमी उत्तर प्रदेश (झांसी डिवीजन को छोड़कर), जम्मू और कश्मीर के जम्मू और कठुआ जिले, हिमाचल प्रदेश का ऊना जिला और पांवटा घाटी तथा उत्तराखंड का तराई क्षेत्र, तथा उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र (पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल, ओडिशा, असम और अन्य उत्तर पूर्वी राज्यों के मैदान) हैं। इस किस्म के उत्पादन की उचित स्थिति देर से बुवाई तथा सिंचित अवस्था है। यह किस्म लगभग 37.0 कुन्तल प्रति हेक्टेयर (उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र) और 28.3 कुन्तल प्रति हेक्टेयर (उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र) तक औसत उपज देती है जबकि इसकी उपज क्षमता 46.1 कुन्तल प्रति हेक्टेयर (उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र) और 40.7 कुन्तल प्रति हेक्टेयर (उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र) है। यह लगभग 102 दिन (उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र) और 94 दिन (उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र) में पक जाती है। यह पीले और भूरे रतुए रोग के लिए प्रतिरोधी है, तथा चपाती एवं ब्रेड बनाने के लिए उपयुक्त है।

मध्य क्षेत्र हेतु चपाती एवं ड्यूरम गेहूं की अनुमोदित प्रजातियाँ

एच.आई. 8737 (पूसा अनमोल): ड्यूरम गेहूं की एक अधिक उपज देने वाली किस्म है। यह किस्म लगभग 53.4 कुन्तल प्रति हेक्टेयर औसत उपज देती है, जबकि इसकी उपज क्षमता 67.0 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है। यह किस्म केंद्रीय उप–समिति द्वारा विमोचित है तथा देश के मध्य क्षेत्र में समय पर बुवाई तथा सिंचित अवस्था के लिए अधिसूचित है। यह बीटा कैरोटीन (विटामिन ए का अग्रगामी अवयव), लौह तत्व एवं जस्ता से भरपूर किस्म है। इसमें करनाल बंट के लिए भी प्रतिरोधक क्षमता है।

एच.आई. 8759 (पूसा तेजस): ड्यूरम गेहूं की एक अधिक उपज देने वाली किस्म है। यह किस्म लगभग 57.0 कुन्तल प्रति हेक्टेयर औसत उपज देती है, जबकि इसकी उपज क्षमता 76.0 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है। यह किस्म केंद्रीय उप–समिति द्वारा विमोचित है तथा देश के मध्य क्षेत्र में समय पर बुवाई तथा सिंचित अवस्था के लिए अधिसूचित है। यह पीले और भूरे रतुआ रोग हेतु अवरोधी है, तथा एक से दो सिंचाई के लिए उत्तम है। इस किस्म में अधिक प्रोटीन (12%) होने के साथ ही साथ बीटा कैरोटीन (5.7 पीपीएम), लौह तत्व (42.1 पीपीएम) एवं जस्ता (42.8 पीपीएम) भी भरपूर मात्रा में है। यह किस्म उत्तम चपाती, पास्ता तथा अन्य पारंपरिक भोजन के उत्पाद बनाने लिए उपयुक्त है।

एच. डी. 4728 (पूसा मालवी): एक ड्यूरम गेहूं की अधिक उपज देने वाली किस्म है। यह किस्म लगभग 54.2 कुन्तल प्रति हेक्टेयर औसत उपज देती है, जबकि इसकी उपज क्षमता 68.0 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है। यह किस्म केंद्रीय उप–समिति द्वारा विमोचित है तथा देश के मध्य क्षेत्र में समय पर बुवाई तथा सिंचित अवस्था के लिए अधिसूचित है। यह एक अर्धलम्बाई (90 से.मी.) तथा अधिक कल्ले वाली 120 दिनों में पकने वाली किस्म है। यह काले और भूरे रतुआ रोग के लिए अत्यधिक प्रतिरोधी है। इसके दाने चमकीले भूरे और बड़े आकार (48.3 ग्राम प्रति 1000 दाने) के हैं, जो सूजी बनाने लिए उपयुक्त है।

प्रायद्वीप क्षेत्रों हेतु चपाती एवं ड्यूरम गेहूं की अनुमोदित प्रजातियाँ

एच.आई. 1605 (पूसा उजाला): एक अधिक उपज देने वाली गेहूं की किस्म है। यह लगभग 30.0 कुन्तल प्रति हेक्टेयर औसत उपज देती है, जबकि इसकी उपज क्षमता 44.0 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है। यह किस्म केंद्रीय उप–समिति द्वारा विमोचित है तथा देश के प्रायद्वीप क्षेत्रों में समय से बुवाई तथा सिमित सिंचाई अवस्था के लिए अधिसूचित है। यह किस्म मध्यम लम्बाई की है जो 105 से 110 दिन में पक जाती है। यह काले और भूरे रतुआ रोग, करनाल बंट, लीफ ब्लाइट, पाउडरी मिल्ड्यू, फ्लैग स्मट और लूज स्मट, लीफ ब्लाइट जैसी बिमारियों के के लिए प्रौढ़ अवस्था में अत्याधिक अवरोधी है। यह किस्म एक से दो सिंचाई अवस्था के लिए उत्तम है, इसमें अधिक प्रोटीन (13%) होने के साथ ही साथ अधिक लौह (43 पीपीएम) एवं जस्ता (35 पीपीएम) भी है। यह किस्म चपाती के लिए उपयुक्त है।

एच.आई. 8805: डयूरम किस्म का विमोचन केंद्रीय किस्म विमोचन समिति द्वारा किया गया है, तथा ये प्रायद्वीपीय क्षेत्र (महाराष्ट्र, कर्नाटक और तमिलनाडु के मैदान) के लिए के अनुमोदित है। इस किस्म के उत्पादन की उचित स्थिति, समय से बुवाई तथा वर्षा–आधारित अवस्था है। यह लगभग 30.4 कुन्तल प्रति हेक्टेयर तक औसत उपज देती

है, जबकि इसकी उपज क्षमता 35.4 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है। यह लगभग 105 दिन में परिपक्व हो जाती है। यह काले और भूरे रतुए रोग के लिए प्रतिरोधी है, तथा इसमें उच्च समग्र पास्ता स्वीकार्यता (5.7), प्रोटीन (12.8:), पीला–वर्णक (4.9 पीपीएम), लौह (40.4 पीपीएम) और जस्ता (33.9 पीपीएम) है। यह कम–नमी तथा उच्च–तापमान के प्रति सहिष्णु भी है।

एच.आई. 8802: डयूरम गेहूं की किस्म का विमोचन केंद्रीय किस्म विमोचन समिति द्वारा किया गया है। इस किस्म का अनुमोदित क्षेत्र प्रायद्वीपीय क्षेत्र (महाराष्ट्र, कर्नाटक और तमिलनाडु के मैदान) हैं। इसके उत्पादन की उचित स्थिति समय से बुवाई तथा वर्षा–आधारित अवस्था है। यह लगभग 29.1 कुन्तल प्रति हेक्टेयर तक औसत उपज देती है, जबकि इसकी उपज क्षमता 36.0 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है। यह लगभग 109 दिन में परिपक्व हो जाती है। यह काले और भूरे रतुए रोग के लिए प्रतिरोधी है, तथा इसमें उच्च प्रोटीन (13.0%), पीला–वर्णक (5.7 पीपीएम), लौह (39.5 पीपीएम), जस्ता (35.9 पीपीएम) तथा समग्र पास्ता स्वीकार्यता (6.2) है। यह कम–नमी तथा उच्च–तापमान के प्रति सहिष्णु भी है।

एच.आई. 8777: ड्यूरम गेहूं की बरानी अवस्था में अधिक उपज देने वाली किस्म है। यह लगभग 18.5 कुन्तल प्रति हेक्टेयर तक औसत उपज देती है, जबकि इसकी उपज क्षमता 28.8 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है। यह किस्म केंद्रीय उप–समिति द्वारा विमोचित है, तथा देश के प्रायद्वीप क्षेत्र में बरानी अवस्था के लिए अधिसूचित है। यह पीले और भूरे रतुआ रोग, करनाल बंट, लीफ ब्लाइट, पाउडरी मिल्ड्यू, फ्लैग स्मट और लूज स्मट, फ्यूजेरियम हेड ब्लाइट जैसी बिमारियों के के लिए प्रौढ़ अवस्था में अत्याधिक अवरोधी है। यह किस्म एक से दो सिंचाई अवस्था के लिए उत्तम है। इसमें उच्च प्रोटीन (11.5%) के साथ साथ अधिक लौह तत्व (41.5 पीपीएम) एवं जस्ता (35.5 पीपीएम) भी है। यह चपाती तथा बिस्कुट बनाने के लिए उपयुक्त है।

उत्तरी पर्वतीय हिमालय क्षेत्रों हेतु गेहूं की अनुमोदित प्रजातियाँ

एच.एस. 542 (पूसा किरण): गेहूं की एक उच्च उत्पादकता वाली किस्म है। यह लगभग 32.9 कुन्तल प्रति हेक्टेयर तक औसत उपज देती है, जबकि इसकी उपज क्षमता 60.3 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है। यह केंद्रीय उप–समिति द्वारा विमोचित है, तथा देश के उत्तरी पर्वतीय हिमालय क्षेत्रों में अगेती बुवाई तथा बरानी अवस्था हेतु अधिसूचित है। यह रतुआ रोग के लिए प्रतिरोधक है, तथा चपाती बनाने के लिए उपयुक्त है।

एच.एस. 562: गेहूं की अधिक उपज देने वाली किस्म है। यह लगभग 36.0 कुन्तल प्रति हेक्टेयर तक औसत उपज देती है, जबकि इसकी उपज क्षमता 52.0 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है। यह किस्म केंद्रीय उप–समिति द्वारा विमोचित है, तथा देश के उत्तरी पर्वतीय हिमालय क्षेत्र में समय से बुवाई तथा सिंचित अवस्था हेतु अधिसूचित है। इस किस्म में Yr A+, Lr23, Sr8a+8b जीन के संयोजन होने के कारण रतुआ रोग के लिए अत्यधिक प्रतिरोधी है। यह देश के उत्तर पहाड़ी क्षेत्रों में काफी प्रचलित है।

डायकोकम (खपली) गेहूं की अनुमोदित प्रजाति

एच.डब्लू. 1098 (नीलगिरि खापली): डायकोकम (खपली) गेहूं की एक अधिक उपज देने वाली किस्म है जो लगभग 45.5 कुन्तल प्रति हेक्टेयर तक औसत उपज देती है, जबकि इसकी उपज क्षमता 47.8 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है। इसको देश के समस्त खपली गेहूं उगाने वाले क्षेत्रों के लिए अधिसूचित किया गया है। यह किस्म पीले, भूरे और काले रतुआ रोगों लिए प्रौढ़ावस्था में अत्यधिक प्रतिरोधी है। इसमें उच्च प्रोटीन (16.5%), अधिक वजन (46.5 ग्राम प्रति 1000 दाने) तथा बीटा कैरोटीन (3.39 पीपीएम) विद्यमान है।

जौ की अनुमोदित प्रजाति

बी.एच.एस. 400 (पूसा शीतल): किस्म के अनुमोदित क्षेत्र उत्तरी पहाड़ी क्षेत्र (जम्मू और कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड और उत्तर पूर्वी राज्य) हैं। इस किस्म के उत्पादन की उचित स्थिति वर्षा–आधारित तथा सिंचित अवस्था है। यह लगभग 36.6 कुन्तल प्रति हेक्टेयर (उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र) और 28.1 कुन्तल प्रति हेक्टेयर (उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र) तक औसत उपज देती है, जबकि इसकी उपज क्षमता 49.7 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है। यह लगभग 168 दिन में परिपक्व हो जाती है। इसमें छह पंक्तिबद्ध पतवार होते हैं तथा यह पीले रतुआ रोग के लिये प्रतिरोधी है। इसमें

प्रोटीन की उच्च मात्रा (9.2%) है, तथा 1000 दानों का वजन 40.2 ग्राम है।

सरसों की अनुमोदित प्रजातियाँ

पूसा सरसों 25: इस किस्म को राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, जम्मू एवं कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश राज्यों के लिए जारी और अधिसूचित किया गया है। समय पूर्व बुवाई (सितम्बर का पहला सप्ताह) एवं सिंचित परिस्थितियों में इस किस्म से लगभग 39.6% तक तेल मिल जाता है। यह किस्म लगभग 105 दिनों में पक जाती है। इसकी औसत उपज 15.0 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है, तथा यह उत्तर पूर्वी राज्यों में तोरिया का एक उत्तम विकल्प है।

पूसा सरसों 26: इस किस्म को राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, जम्मू एवं कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश राज्यों के लिए जारी एवं अधिसूचित किया गया है। देर से बुवाई एवं सिंचित परिस्थितियों में इस किस्म से लगभग 37.6% तक तेल मिल जाता है। यह किस्म लगभग 126 दिनों में पक जाती है। इसकी औसत उपज 16.04 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है। यह किस्म उच्च ताप हेतु प्रतिरोधी है।

पूसा सरसों 27: इस किस्म को राजस्थान के कोटा क्षेत्र, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, एवं उत्तराखंड राज्यों के लिए जारी और अधिसूचित किया गया है। समय पूर्व बुवाई (सितम्बर का पहला सप्ताह) एवं सिंचित परिस्थितियों में इसमें लगभग 41.7% तक तेल मिल जाता है। यह लगभग 118 दिनों में पक जाती है, तथा इसकी औसत उपज 15.4 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है। यह किस्म उच्च–ताप हेतु सहनशील है, तथा एकाधिक फसल पद्धति के लिए भी उपयुक्त है।

पूसा सरसों 28: इस किस्म को पूर्वी राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, जम्मू एवं कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश राज्यों के लिए जारी एवं अधिसूचित किया गया है। समय पूर्व बुवाई (सितम्बर का पहला सप्ताह) एवं सिंचित परिस्थितियों में इसमें लगभग 41.5% तक तेल मिल जाता है। यह किस्म लगभग 107 दिनों में पक जाती है, तथा इसकी औसत उपज 19.9 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है। यह किस्म उच्च–ताप हेतु सहनशील है, तथा एकाधिक फसल पद्धति के लिए भी उपयुक्त है।

पूसा सरसों 30: इस किस्म को पूर्वी राजस्थान, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, एवं उत्तराखंड राज्यों के लिए जारी एवं अधिसूचित किया गया है। उचित समय पर बुवाई (अक्टूबर) एवं सिंचित परिस्थितियों में इसमें लगभग 37.7% तक तेल मिल जाता है। यह किस्म लगभग 137 दिनों में पक जाती है। इसकी औसत उपज 18.24 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है, तथा यह एक 'सिंगल जीरो' किस्म है, जिसमें इरुसिक अम्ल की मात्रा <2% होती है ।

पूसा डबल जीरो सरसों (पीडीजेडएम)–31: भारत की पहली 'डबल जीरो' भारतीय सरसों की किस्म है जिसे आमतौर पर कैनोला गुणवत्ता वाली सरसों के रूप में भी जाना जाता है। इस किस्म में इरूसिक एसिड <2% और ग्लूकोसाइनोलेट्स <30 पीपीएम है। इस किस्म को पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, जम्मू और उत्तरी राजस्थान राज्यों के लिए जारी एवं अधिसूचित किया गया है। पीडीजेडएम–31 एक पीले बीज तथा मध्यम परिपक्वता वाली प्रजाति है, जो लगभग 142 दिनों में पक जाती है। इसकी औसत उपज 23.3 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है। उचित समय पर बुवाई (अक्टूबर बुवाई) एवं सिंचित परिस्थितियों में इसमें लगभग 40.6% तक तेल मिल जाता है। यह प्रजाति कम–नमी हेतु सहिष्णु है, साथ ही साथ सफेद रतुआ रोग के प्रति मध्यम प्रतिरोधी है।

चने की अनुमोदित प्रजातियाँ

पूसा 3022 (बीजी 3022): उत्तर पश्चिमी भारत के लिए उपयुक्त एक उच्च उपज वाली काबुली चने की किस्म है। यह किस्म उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र (राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड) में रबी के मौसम में खेती के लिए भारत सरकार द्वारा अधिसूचित है। इसकी औसत उपज 18.0 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है, जबकि संभावित उपज 30 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है। इसके 100–बीज का वजन 36–38 ग्राम है। इसमें फ्यूसैरियम विल्ट के प्रति प्रतिरोधी क्षमता है, तथा इसमें प्रोटीन की मात्रा 25% है। यह 145–150 दिन में पकने वाली किस्म है।

पूसा 3043 (बीजी 3043): उत्तर पूर्वी भारत के लिए उपयुक्त एक उच्च उपज वाली देसी चने की किस्म है। यह किस्म उत्तर पूर्वी समतल क्षेत्र (बिहार, झारखंड, पूर्वी उत्तर

प्रदेश, पश्चिम बंगाल और असम राज्यों) में रबी के मौसम में खेती के लिए भारत सरकार द्वारा अधिसूचित है। इसकी औसत उपज 16 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है, जबकि संभावित उपज 25 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है। इसके 100–बीज का वजन 22–23 ग्राम है, तथा इसके बीज का रंग और आकार बहुत आकर्षक है। इसमें फ्यूसैरियम विल्ट के प्रति मध्यम प्रतिरोधी क्षमता है। यह 125–130 दिन में पकने वाली किस्म है, तथा चावल–चने फसल प्रणाली के लिए उपयुक्त है।

बी.जी.डी. 111–1 देसीः एक उच्च उपज वाली, कम–नमी हेतु उपयुक्त देसी चने की किस्म है। यह किस्म कर्नाटक राज्य में खेती के लिए भारत सरकार द्वारा अधिसूचित है। यह जल्द परिपक्व (90–95 दिन) होने वाली किस्म है। इसकी औसत उपज 18 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है, जबकि संभावित उपज 19 से 21 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है। इसके 100–बीज का वजन 25 ग्राम है, तथा इसके बीज का रंग और आकार बहुत आकर्षक है। इसमें फ्यूसैरियम विल्ट के प्रति उच्च प्रतिरोधक क्षमता है।

बी.जी. 3062 (पूसा पार्वती) देसीः एक उच्च उपज वाली लम्बी एवं खड़ी देसी चने की किस्म है जो मशीन द्वारा कटाई के लिए उपयुक्त है। इस किस्म को मध्य प्रदेश, गुजरात, छत्तीसगढ़ और राजस्थान के कुछ हिस्से तथा महाराष्ट्र राज्यों में रबी के मौसम में खेती के लिए जारी तथा अधिसूचित किया गया है। यह जल्द परिपक्व (110–115 दिन) होने वाली किस्म है। इसकी औसत उपज 22.7 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है, जबकि संभावित उपज 34 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है। इसके 100–बीज का वजन 24–25 ग्राम है तथा इसके बीज का रंग और आकार बहुत आकर्षक है। इसमें फ्यूसैरियम विल्ट के प्रति उच्च प्रतिरोधक क्षमता है।

पूसा चना 10216 देसीः (बीजीएम 10216) एक मार्कर असिस्टेड ब्रीडिंग के माध्यम से विकसित की गई भारत की पहली चने की किस्म है। इस किस्म को मध्य प्रदेश, गुजरात, छत्तीसगढ़ और राजस्थान के कुछ हिस्से तथा महाराष्ट्र राज्यों में रबी के मौसम में खेती हेतु जारी तथा अधिसूचित किया गया है। यह जल्द पकने (110 दिन) वाली किस्म है, तथा इसकी औसत उपज 14.5 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है जो इसके आवर्ती जनक पूसा 372 से 11.9% अधिक है। इसके 100–बीज का वजन 22 ग्राम है तथा यह एक कम–नमी सहिष्णु किस्म है। इसमें फ्यूसैरियम विल्ट के प्रति मध्यम प्रतिरोधी क्षमता है।

मसूर की अनुमोदित प्रजातियाँ

एल–4717: रबी मौसम में वर्षा आधारित क्षेत्रों हेतु समय पर बुवाई के लिए उपयुक्त मसूर की एक उच्च उत्पादन वाली किस्म है। इस किस्म को मध्य क्षेत्र (मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और राजस्थान और छत्तीसगढ़ के कुछ हिस्सों) के लिए अधिसूचित और जारी किया गया है। इस किस्म की औसत उपज 12–13 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है। यह पाउडर फफूंदी रोग के लिए प्रतिरोधी है तथा एस्कोकाइटा ब्लाइट और फ्यूजेरियम विल्ट के लिए मध्यम रूप से प्रतिरोधी है। इसकी परिपक्वता 100 दिन की है जो इस किस्म को मध्य क्षेत्र में पकते समय मिलने वाले उच्च–ताप और कम–नमी के प्रतिकूल प्रभाव से बचने में मदद करता है।

एल–4727: मसूर की एक उच्च उत्पादन वाली किस्म है जोकि रबी मौसम में वर्षा आधारित क्षेत्रों हेतु समय पर बुवाई के लिए उपयुक्त है। इस किस्म को मध्य क्षेत्र (मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और राजस्थान और छत्तीसगढ़ के कुछ हिस्सों) के लिए अधिसूचित और जारी किया गया है। इस किस्म की औसत उपज 11.5 से 14.5 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है। यह किस्म उक्ठा (विल्ट) रोग के लिए मध्यम रूप से प्रतिरोधी है। इसकी परिपक्वता 103 दिन की है जो इस किस्म को मध्य क्षेत्र में पकते समय मिलने वाले उच्च–ताप और कम–नमी के प्रतिकूल प्रभाव से बचने में मदद करता है।

एल–4729: रबी मौसम में वर्षा आधारित क्षेत्रों हेतु समय पर बुवाई के लिए उपयुक्त है। इस किस्म को मध्य क्षेत्र (मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और राजस्थान और छत्तीसगढ़ के कुछ हिस्सों) के लिए अधिसूचित और जारी किया गया है। एल–4729 में औसत प्रोटीन की मात्रा 24.91% है। इस किस्म की औसत उपज 17–18 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है तथा यह किस्म उक्ठा (विल्ट) रोग के लिए मध्यम रूप से प्रतिरोधी है। इसकी परिपक्वता 103 दिन की है, जो इस किस्म को मध्य क्षेत्र में पकते समय मिलने वाले उच्च ताप और कम–नमी के प्रतिकूल प्रभाव से बचने में मदद करता है।

राया सरसों की उन्नत खेती

यशपाल, सुजाता वासुदेव, नवीन सिंह, नविन्द्र सैनी, राजेन्द्र सिंह एवं देवेन्द्र कुमार यादव
आनुवांशिकी संभाग, भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110 012

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा देश के अलग–अलग क्षेत्रों की विभिन्न परिस्थितियों में अधिक उपज देने वाली सरसों/लाहा/राया की उन्नत किस्में विकसित की गई हैं जिनमें उच्च तापमान प्रतिरोधक अगेती एवं पछेती बिजाई के लिए उपयुक्त जल्दी पकने वाली, कम ईरूसिक अम्ल एवं ग्लूकोसिनोलेट वाली किस्में शामिल हैं: जिनका विवरण सस्तुत क्षेत्र के अनुसार निम्नलिखित हैं:–

पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, दिल्ली, बिहार, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा एवं असम

पूसा अग्रणी (एस.ई.जे. 2): सिंचित अवस्था में अगेती बुआई के लिए 1998 में अनुमोदित, औसत पैदावार 17.5 क्विं./है., कम अवधि (110 दिन) में पकने वाली राया की प्रथम किस्म, तेल की औसत मात्रा लगभग 39–40 प्रतिशत, तोरिया फसल का एक अच्छा विकल्प, देश के उत्तर–पूर्वी व पूर्वी राज्यों में धान की फसल के बाद व मुख्य रबी फसल से पहले इस किस्म को बोया जा सकता है।

पूसा महक (जे.डी. 6): सिंचित अवस्था में अगेती बुआई के लिए 2005 में अनुमोदित, औसत पैदावार 17.5 क्विं./है., तोरिया फसल का विकल्प, तेल की औसत मात्रा लगभग 40 प्रतिशत, पकने की अवधि 118 दिन, देश के उत्तर–पूर्वी व पूर्वी राज्यों में धान की फसल के बाद बोया जा सकता है। इस किस्म की कटाई के बाद जनवरी माह में प्याज या गन्ने की खेती की जा सकती है।

राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, जम्मू–कश्मीर का मैदानी भाग एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश

पूसा सरसों–24 (एल.ई.टी. 18): समय पर सिंचित अवस्था में बुआई के लिए 2008 में अनुमोदित, औसत पैदावार 20.25 क्विं./है., कम ईरूसिक अम्ल (2 प्रतिशत से कम) वाली किस्म, पकने की अवधि 140 दिन, दाने छोटे (4 ग्राम/1000 दाने) हैं जिनमें तेल की मात्रा 36.55 प्रतिशत है।

पूसा सरसों–25 (एन.पी.जे. 112): सिंचित अवस्था में अगेती (सितम्बर) बुआई के लिए 2010 में अनुमोदित, औसत पैदावार 14.7 क्विं./है., राया की सबसे कम समय (107 दिन) में पकने वाली किस्म, तेल की औसत मात्रा लगभग 39.6 प्रतिशत, तोरिया फसल का एक अच्छा विकल्प, देश के उत्तर पश्चिमी राज्यों में बहु फसलिय चक्र में; खासतौर पर सितम्बर से मध्य दिसम्बर तक बिजाई के लिए उपयुक्त हैं।

पूसा सरसों–26 (एन.पी.जे. 113): सिंचित अवस्था में पछेती (नवम्बर) बुआई के लिए 2010 में अनुमोदित, औसत पैदावार 16.04 क्विं./है., पकने की अवधि 126 दिन, तेल की औसत मात्रा लगभग 37.6 प्रतिशत, देश के उत्तर–पश्चिमी राज्यों में कपास, धान, एवं ग्वार की कटाई के बाद बिजाई के लिए उपयुक्त, पकाव के समय उच्च तापमान, लवणीयता के प्रति सहिष्णु है।

पूसा सरसों–28 (एन.पी.जे. 124): सिंचित अवस्था में अगेती (सितम्बर) बुआई के लिए 2011 में अनुमोदित, औसत पैदावार 19.93 क्विं./है., राया की कम समय (107 दिन) में पकने वाली किस्म है, तेल की औसत मात्रा लगभग 41.7 प्रतिशत, तोरिया फसल का एक अच्छा विकल्प, देश के उत्तर–पश्चिमी राज्यों में बहु फसलिय चक्र में; खासतौर पर सितम्बर से मध्य दिसम्बर तक बिजाई के लिए उपयुक्त हैं।

पूसा सरसों–29 (एल.ई.टी. 36): समय पर सिंचित अवस्था में बुआई के लिए 2013 में अनुमोदित, औसत

पैदावार 21.7 क्विं./है., कम ईरूसिक अम्ल (2 प्रतिशत से कम) वाली किस्म, पकने की अवधि 143 दिन, दाने छोटे (4 ग्राम/1000 दाने) हैं जिनमें तेल की मात्रा 37.2 प्रतिशत है।

पूसा डबल जीरो सरसों–31 (पी.डी.जेड.एम.–1): समय पर सिंचित अवस्था में बुआई के लिए 2016 में अनुमोदित, औसत पैदावार 23.34 क्विं./है., पकने की अवधि 142 दिन है। इसके बीज का रंग भूरा पीला होता है। दाने छोटे आकार (3.68 ग्राम प्रति 1000 बीज भार) के है जिनमें तेल की मात्रा 41 प्रतिशत होती है। यह कैनोला गुणवत्ता वाली देश की प्रथम, भारतीय सरसों की किस्म हैं (इरुसिक अम्ल की मात्रा 2 प्रतिशत से कम एवं ग्लूकोसिनोलेट की मात्रा तेल रहित खली में 30 माइक्रोमोल प्रति ग्राम से कम होती हैं)।

राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, जम्मू–कश्मीर का मैदानी भाग, उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, मध्य प्रदेश एवं छत्तीसगढ़

पूसा सरसों–21 (एल.ई.एस. 1–27): समय पर सिंचित अवस्था में बुआई के लिए 2007 में अनुमोदित, औसत पैदावार द्वितीय क्षेत्र (राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, जम्मू कश्मीर व हिमाचल प्रदेश के मैदानी क्षेत्र) में 21.1 क्विं./है. तथा तृतीय क्षेत्र (उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, मध्य प्रदेश, और छत्तीसगढ़) में 18.6 क्विं./है., कम ईरूसिक अम्ल (2 प्रतिशत से कम) वाली किस्म, द्वितीय क्षेत्र में औसत 142 दिनों में तथा तृतीय क्षेत्र में 133 दिनों में पकती है, दाने छोटे (4.3 ग्राम/1000 दाने) हैं जिनमें तेल की औसत मात्रा 36 प्रतिशत है।

उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश एवं छत्तीसगढ़

पूसा जगन्नाथ (वी.एस.एल. 5): सामान्य बुआई के लिए 1999 में अनुमोदित, औसत पैदावार 25.0 क्विं./है., इसका दाना मध्यम (5.5 ग्राम/1000 दाने) आकार का है जिसमें तेल की मात्रा 40 प्रतिशत, यह किस्म 125 दिनों में पकती है। सफेद रतुआ व अल्टरनैरिया विवर्णता रोगों के प्रति सिंचित अवस्था में सहिष्णु।

पूसा सरसों–27 (ई.जे. 17): सिंचित अवस्था में अगेती बुआई के लिए 2010 में अनुमोदित, औसत पैदावार 15.35 क्विं./है., पकने की अवधि 118 दिन है। तेल की औसत मात्रा लगभग 41.7 प्रतिशत, तोरिया फसल का एक अच्छा विकल्प, देश के उत्तर–मध्य भारत में बहु फसलिय चक्र में; खासतौर पर सितम्बर से मध्य दिसम्बर तक बिजाई के लिए उपयुक्त हैं, जमवार के समय उच्च तापमान, लवणीयता के प्रति सहिष्णु।

पूसा सरसों–30 (एल.ई.एस. 43): समय पर सिंचित अवस्था में बुआई के लिए 2013 में अनुमोदित, औसत पैदावार 18.2 क्विं./है., कम ईरूसिक अम्ल (2 प्रतिशत से कम) वाली किस्म, पकने की अवधि 137 दिन, दाने मध्यम आकार (5.38 ग्राम प्रति 1000 बीज भार) के है जिनमें तेल की मात्रा 37.70 प्रतिशत होती है।

राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली

पूसा विजय (एन.पी.जे. 93): सिंचित अवस्था समय पर बुआई के लिए 2008 में राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के लिए अनुमोदित, औसत पैदावार 25.0 क्विं./है., इसके दाने मोटे (6 ग्राम/1000 दाने) हैं जिनमें तेल की औसत मात्रा 38.5 प्रतिशत, पकने की अवधि 140 दिन, अजैविक दबावों जैसे कि जमवार के समय उच्च तापमान, लवणीयता के प्रति सहिष्णु।

पूसा तारक (ई.जे. 13): सिंचित अवस्था में अगेती (सितम्बर) बुआई के लिए 2009 में अनुमोदित, औसत पैदावार 19.24 क्विं./है., तेल की औसत मात्रा लगभग 40 प्रतिशत, पकने की अवधि 121 दिन, राया की यह किस्म बहु फसलिय चक्र के लिए उपयोगी। इस किस्म की कटाई के बाद जनवरी माह में प्याज या गन्ने की खेती की जा सकती है।

पूसा करिश्मा (एल.ई.एस. 39): समय पर सिंचित अवस्था में बुआई के लिए 2005 में अनुमोदित, औसत पैदावार 22.0 क्विं./है., कम ईरूसिक अम्ल (2 प्रतिशत से कम) वाली देश की प्रथम किस्म, पकने की अवधि 145 दिन, दाने पीले रंग के, छोटे आकार के एवं आकर्षक हैं जिनमें तेल

की औसत मात्रा 38 प्रतिशत, सफेद रतुआ रोग के प्रति सहिष्णु।

पूसा सरसों–22 (एल.ई.टी. 17): समय पर सिंचित अवस्था में बुआई के लिए 2008 में अनुमोदित, औसत पैदावार 20.7 क्विं./है., कम ईरूसिक अम्ल (2 प्रतिशत से कम) वाली किस्म, पकने की औसत अवधि 142 दिन, दानों में तेल की औसत मात्रा 35.5 प्रतिशत।

करण राई की किस्में

राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, जम्मू–कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश एवं उत्तराखंड

पूसा स्वर्णिम (आई.जी.सी. 01): सिंचित व बारानी अवस्थाओं में बुआई के लिए 2003 में अनुमोदित, औसत पैदावार (सिंचित) 16–17 क्विं./है. तथा (बारानी) 14–15 क्विं./है. है। दाने पीले रंग के हैं जिनमें तेल की औसत मात्रा 40–43 प्रतिशत तक होती है। पकने की औसत अवधि 165 दिन है। इस किस्म में उच्च दर्जे की सूखा सहिष्णुता है तथा सफेद रतुआ रोग के प्रति उच्च प्रतिरोधकता है। झुलसा रोग का प्रभाव भी इस किस्म पर बहुत कम पड़ता हैं।

राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली

पूसा आदित्य (एन.पी.सी. 9): बारानी अवस्थाओं में समय पर बुआई के लिए 2006 में अनुमोदित, औसत पैदावार 14.0 क्विं./है., दाने छोटे (4 ग्राम/1000 दाने) आकार के हैं जिनमें तेल की औसत मात्रा 40 प्रतिशत है। पकने की अवधि 166 दिन तथा बारानी अवस्थाओं एवं कम उपजाऊ भूमियों में अच्छी पैदावार देती है। डाउनी मिल्डयू का बिल्कुल संक्रमण नहीं होता तथा सफेद रतुआ रोग के प्रति प्रतिरोधक है। झुलसा रोग, तना गलन व पाउडरी मिल्डयू के प्रति सहिष्णु है। सामान्य अवस्था में सरसों के तेले के प्रति भी सहिष्णुता है।

इन सभी किस्मों के प्रत्येक के अनुमोदन क्षेत्र में परीक्षण किये गये हैं तथा औसत उपज विभिन्न परीक्षण क्षेत्रों में सही परिस्थितियों में उन्नत कृषि क्रियाओं के आधार पर प्राप्त की गई है। अतः दर्शायी गई उत्पादकता सही परिस्थितियों में बिजाई करने से जैसे कि बिजाई का सही समय, विभिन्न अवस्थाओं पर सिंचाई, खाद, सस्य क्रियाऐं, पौध संरक्षण आदि से प्राप्त की जा सकती है।

उत्पादन प्रौद्योगिकी

सस्य क्रियाऐं

खेत का चुनाव: बहुत रेतीली व नमी वाली भूमि को छोड़कर सभी प्रकार की भूमि उपयुक्त हैं। अधिक पैदावार के लिए बलुई दोमट से दोमट मिट्रटी वाली भूमि उपयुक्त है।

खेत की तैयारी: वर्षा के दिनों में जुताई इस हिसाब से करें कि खेत में खरपतवार एवं पिछली फसल के अवशेष न जमने पाएं। वर्षा के बाद एक दो जुताई कर खेत में नमी संरक्षित करें। बुआई से पहले दो बार जुताई कर खेत को तैयार करें।

बुआई का समय

अगेती	:	1–15 सितम्बर
समय पर	:	अक्टूबर माह
पछेती	:	1–15 नवम्बर
पूर्वोत्तर क्षेत्र	:	मध्य नवम्बर तक

बीज की मात्रा: 3.0–4.0 किलोग्राम प्रति हैक्टर।

बीज उपचार: सफेद रोली के लिए एप्रान 35 एस.डी. 6 ग्राम या कार्बनडेजीम (बावस्टीन) 2 ग्राम प्रति किलो बीज के हिसाब से बीज उपचार करें।

बिजाई एवं विरलीकरण

दूरी : कतार से कतार 30–45 सेंटीमीटर; पौधे से पौधे 10–15 सेंटीमीटर।

गहराई : बीज 2.0–2.5 सेंटीमीटर की गहराई पर डालें।

छँटाई : बिजाई के 15 से 20 दिन बाद या प्रथम सिंचाई से पूर्व छँटाई कर पौधे से पौधे की दूरी 10–15 सेंटीमीटर कर दें।

उर्वरक: मृदा परीक्षण कराके मृदा स्वास्थ्य कार्ड की संस्तुति के अनुसार उर्वरक की मात्रा दें।

सिंचाईः वर्षा एवं सिंचाई की उपलब्धता के आधार पर।

	एक सिंचाई	दो सिंचाई	तीन सिंचाई
प्रथम	बुआई के 50–60 दिन बाद	बुआई के 40–45 दिन बाद	बुआई के 35–40 दिन (बढ़वार पर)
दूसरी	–	बुआई के 90–100 दिन बाद	प्रथम सिंचाई के 35–40 दिन (फूल शुरू होने पर)
तीसरी	–	–	दूसरी सिंचाई के 30–35 दिन बाद (फलियाँ शुरू होने पर)

खरपतवार नियंत्रण : फसल में एक दो निराई गुड़ाई अवश्य करें।

पौध संरक्षण उपाय

कीटः पेंटड बग (बगराडा, झारा, धोलिया, चितकबरा कीड़ा) व आरा मक्खी

नियंत्रणः

- अण्डों को नष्ट करने के लिए फसल काटने के बाद गहरी जुताई करें।
- छोटे पौधों में सिंचाई करने से पौधे इस कीट के प्रकोप को सहन कर पाने में काफी हद तक सक्षम हो जाते है।
- शुरूआत में फसल पर कीट का प्रकोप होने पर 2 प्रतिशत मिथाइल पैराथियॉन या 5 प्रतिशत मैलाथियॉन 20–25 किलो प्रति हैक्टर की दर से भुरकाव करें। अधिक प्रकोप होने की अवस्था में डेल्टामैथ्रीन 2.8 ई.सी. 1 मि.ली./ली. प्रति या क्लोरपाइरीफास 20 ई.सी 1000 मि.ली. या साइपरमेथरिन 1 मि.ली./ली.प्रति हैक्टर की दर से 500–600 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।
- फसल पकते समय में भी यदि इस कीट का प्रकोप हो तो 1000 मि.ली. मैलाथियॉन 50 ई.सी. 500–800 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हैक्टर छिड़काव करें।
- पकी हुई फसल को जल्दी झाड़कर पैदावार का सुरक्षित भंडारण करेंण।

चेपा/माहू (एफिड)

नियंत्रणः

- राया की अगेती बुआई करने से चेपा कीट का फसल पर आक्रमण बहुत कम होता है।
- चेपा कीट के प्रकोप से प्रभावित टहनियों को प्रारंभिक अवस्था में ही तोड़कर नष्ट कर दें।
- परजीवी मित्र कीट डायरेटिला रेपी इस कीट को परजीवीयुक्त कर मार देता है। इसके अतिरिक्त परभक्षी कीट जैसे– काक्सीनेला सेप्टमपंकटाटा, क्राइसोपाश सिरफिड आदि चेपा कीट के शिशु एवं प्रौढ़ों को खाकर इस कीट की संख्या को बढ़ने से रोकते है।
- चेपा के प्राकृतिक शत्रु (परभक्षी दुश्मन) कीट जैसे– क्राइसोपा, सिरफिड, काक्सीनेला आदि की कीटनाशकों से रक्षा करें। यदि इन कीटों की संख्या ज्यादा हो तो कीटनाशकों का प्रयोग न करें।
- जब कीट का प्रकोप औसतन 10 प्रतिशत पौधों पर या औसतन 25 कीट प्रति पौधा हो जाए तो इनमें से किसी एक कीटनाशक का प्रयोग करें। डाइमेथोएट 30 ई.सी. या मिथाइल डिमेटॉन 25 ई.सी. या क्यूनलफॉस 25 ई.सी. या थायामिडॉन 25 ई.सी. 1000 मि.ली. या फास्फोमिडॉन 85 डब्ल्यू.एस.सी. 250 मि.ली. या मैलाथियॉन 50 ई.सी. 1250 मि.ली. प्रति हैक्टर की दर से 500–800 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

गोभी की सुंडी (कैबेज बटरफलाई)

नियंत्रणः इस कीट के नियंत्रण के लिए स्पाईनोसेड 3 मि. ली./10 ली. या फिप्रोनिल (2 मि.ली./ली.) का 500–800 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

बीमारियाँ एवं उनका नियंत्रण

सफेद रोली (वाईट रस्ट): बीज उपचार के अलावा बुवाई के 50–60 दिन बाद या बीमारी के लक्षण दिखाई देते ही फफूँदीनाशक दवा रिडोमिल एम.जैड. 72 डब्ल्यू.पी. का 2 ग्राम प्रति लीटर पानी के हिसाब से 500–800 लीटर पानी प्रति हैक्टर की दर से घोल बनाकर छिड़काव करें व यदि जरूरत हो तो 15 दिन बाद दूसरा छिड़काव करें।

अल्टरनेरिया पत्ती धब्बा रोग (अल्टरनेरिया ब्लाइट): फसल पर ब्लाइटॉक्स या इन्डोफिल एम.–45 दवा का 2 ग्राम प्रति लीटर की दर से 500–800 लीटर पानी में घोल बनाकर 70–80 दिन की फसल अवस्था से 15 दिन के अंतराल पर आवश्यकतानुसार 3–4 बार छिड़काव करें। पिछली फसल के अवशेषों को जला देने से भी इस रोग के प्रकोप को कम किया जा सकता है।

तना गलन (स्टैम रोट): जिस खेत में इस रोग का प्रकोप अधिक हो उसमें एक दो सालों तक सरसों की फसल न लें। जब इस रोग के लक्षण दिखाई देते हैं तब तक उस पौधे पर नुकसान हो चुका होता है। अतः जिन खेतों में बीमारी लगातार आती है वहाँ पर इसके नियंत्रण के लिए 70–80 दिन की फसल पर कार्बनडेजीम (बावस्टीन) दवा का 0.05–0.10 प्रतिशत घोल बना कर छिड़काव करें।

झुलसा रोग/मृदुरोमिल आसिता (डाउनी मिल्ड्यू): फसल पर रोग के लक्षण दिखने पर केप्टाफॉल (फोलटॉफ) या मैन्कोजेब या जाइनेब या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 2 ग्राम प्रति लीटर पानी के हिसाब से 500–800 लीटर पानी प्रति हैक्टर की दर से घोल बनाकर 10–12 दिन के अन्तराल पर दो छिड़काव करें।

छाछिया रोग/चूर्णिल आसिता (पाउडरी मिल्ड्यू): कैराथियॉन एल.सी. 200 मि.ली. या गंधक चूर्ण 20 कि.ग्रा. या घुलनशील गंधक 2.5 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से 700–800 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करने से इस रोग के प्रकोप को कम किया जा सकता है।

समेकित रोग प्रबंधन

- ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करने से रोगी पौधों के अवशेषों पर पड़े रोगजनक जमीन में गहराई में दब जाते है तथा कुछ रोग जनक अधिक तापमान के कारण नष्ट हो जाते है। ऐसा करने से रोगों की उग्रता में कमी आती है।
- रोगों से बचाव के लिए फसल की बुआई से पहले ट्राईकोर्डमा विरिडी (2.5 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर) को 60 कि.ग्रा. गोबर की खाद में मिलाकर भूमि में डालें।
- फसल की बुआई अक्टूबर के अंतिम सप्ताह तक अवश्य कर देनी चाहिए क्योंकि इसके पश्चात् बोई गई सरसों वर्गीय फसलों पर रोगों का अधिक आक्रमण होता है।
- रोगों से बचाए रखने के लिए स्वस्थ एवं स्वच्छ बीज को ट्राईकोर्डमा विरिडी (4 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज) अथवा एपरॉन (6 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज) से उपचारित करके बोयें।

पाले से बचाव: जब लगातार कई दिनों तक न्यूनतम तापमान 5^{o} सैल्सियस से कम हो और उत्तरी हवाएँ चलें उस समय पाला पड़ने की संभावना अधिक रहती है। फसल को पाले से बचाने के लिए गंधक के तेजाब का 0.1 प्रतिशत छिड़काव करें। पाला पड़ने की संभावित अवधि में एक सिंचाई करके फसल को पाले के प्रकोप से बचाया जा सकता है।

फसल कटाई, गहाई एवं भण्डारण: फसल को काटकर दो–तीन दिन तक छोटे–छोटे ढेर बनाकर सुखाएं और फिर डण्डों से पीटकर या थ्रेसर द्वारा दाने निकालें। उत्पाद का 8–10 प्रतिशत नमी तक सुखाकर भण्डारण करें।

अधिक उत्पादन के लिए आवश्यक बिन्दु

- अधिक उत्पादकता के लिए उसी क्षेत्र के लिए अनुमोदित किस्मों का ही उपयोग करें।
- अनुमोदित किस्मों के प्रमाणिक बीज भरोसेमन्द स्त्रोत से ही खरीदें। बीज खरीदते समय थैली पर टैग, दो सिलाई व सील का ध्यान रखें। खुली थैली न लें। टैग व बिल फसल कटाई तक सम्भाल कर रखें।
- सही समय पर फसल की बुआई करने से ही अच्छी उत्पादकता ली जा सकती है। सफेद रोली के प्रकोप को कम करने के लिए मुख्य मौसमीय फसल की बुआई 20 अक्टूबर से पहले ही करें। फसल की सही समय पर बिजाई करने से ज्यादातर बिमारियों का प्रकोप कम होता है।
- अगेती बुआई में समय पर बुआई के मुकाबले बीज की मात्रा थोड़ी अधिक रखें।
- यूरिया की आधी मात्रा तथा सिंगल सुपर फास्फेट एवं म्यूरेट ऑफ पोटाश की पूरी मात्रा बुआई से पहले ही खेत में डाल दें तथा यूरिया की बची हुई मात्रा प्रथम सिंचाई पर डालें।
- फास्फोरस एस.एस.पी. खाद से ही दें व खाद व बीज कभी भी मिलाकर बिजाई न करें।
- उचित समय पर पौधों की छँटाई अवश्य कर दें।
- बीमारियों एवं कीड़ों की रोकथाम के लिए सिफारिश की गई दवाईयों का प्रयोग उचित मात्रा में करें। दवाईयाँ हमेशा भरोसेमन्द स्त्रोत से ही खरीदें एवं फसल कटाई तक रसीद अवश्य सम्भाल कर रखें।
- बहु–फसलीय चक्र में राया/सरसों की कम अवधि में पकने वाली किस्मों का ही प्रयोग करें।
- मधु मक्खियों को कीटनाशकों के नुकसान से बचाने के लिए कीटनाशकों का छिड़काव शाम के समय ही करें।

अगेती गाजर की सफल खेती

अमिश कुमार सुरेजा
शाकीय विज्ञान संभाग
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012

गाजर एक सस्ती, गुणकारी तथा लोकप्रिय जड़ वाली सब्जी हैं, जोकि हमारे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक बहुत से पोषक तत्व तथा विटामिन की आपूर्ति करता हैं। गाजर में विटामिन ए अधिक होने से यह आंखों की कमजोरी दूर करती है और ज्योति बढ़ाती है। गाजर का नियमित सेवन करने से रतौंधी रोग दूर किया जा सकता है। गाजर की खेती ज्यादातर ठण्डे और सामान्य शीतोष्ण मैदानी और पहाड़ी क्षेत्राों में की जाती है। परन्तु आजकल गाजर की अगेती खेती भी की जा सकती है। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा अगेती किस्म पूसा वृष्टि विकसित की गई है, जिससे अगेती खेती की जा सकती हैं। अगेती किस्म की खेती करने से किसानों को अच्छी आमदनी होगी और आर्थिक सुधार भी होगा।

किस्म

पूसा वृष्टिः लाल रंग वाली तथा अधिक गर्मी व आर्द्रता प्रतिरोधी व मैदानी क्षेत्राों में जुलाई से बुवाई के लिए उपयुक्त। इस किस्म का अवधि काल 90–95 दिन है। औसत वजन 100-120 ग्राम प्रति गाजर के साथ औसत उपज 20 टन/हेक्टेयर। इस किस्म में कैंसर प्रतिरोधी लाईकोपिन 400 माइक्रोग्राम/100 ग्राम और कुल कैरोटिनोयड़ 867 माइक्रोग्राम/100 ग्राम पायी जाती हैं। इसलिए इसकी स्वास्थ्य क्षमता प्रचुर है।

मिट्टी व जलवायु

इसकी पैदावार दोमट मिटटी में अधिक अच्छी होती है। बुआई के समय खेत की मिटटी अच्छी तरह से भुरभुरी होनी चाहिए जिससे जडें अच्छी तरह बन सकें। अगेती गाजर में रंग विकास एवं जडों की वृद्वि के लिए 30–35 डिग्री सेल्सियस तापमान अनुकुल होता है।

खेत की तैयारी व खरपतवार नियंत्रण

खेत की जुताई के पश्चात खेत में आधी मात्राा नाइट्रोजन तथा पूरी मात्रा फॉस्फोरस व पोटाश का मिलाकर 45 सें.मी. के अंतर पर मेड़ें तैयार करें और 3.0 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से स्टॉम्प नामक खरपातवारनाशी का छिड़काव करें और हल्की सिंचाई करें या छिडकाव से पहले पर्याप्त नमी सुनिश्चित करें।

उर्वरक व खादें

एक हेक्टेयर खेत में लगभग 10–15 टन सड़ी गोबर की खाद अन्तिम जुताई के समय तथा 30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन तथा 40 कि.ग्रा. पोटाश और फॉस्फोरस प्रति हेक्टेयर की दर से बुआई के समय डालें। बुआई के 5–6 सप्ताह बाद 30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन को टॉप ड्रेसिंग के रूप में डालें।

बीज की मात्रा व बीजाई का समय

एक हेक्टेयर क्षेत्र के लिए लगभग 5 कि. ग्राम. बीज की आवश्यकता होती है। उत्तरी भारत के मैदानों में बीजाई मध्य अगस्त से शुरु की जा सकती है।

बीजाई की विधि

बुवाई 45 सें.मी. के अन्तराल पर बनी मेंड़ों पर 2–3 सें.मी. गहराई पर करें और पतली मिट्टी की परत से ढक दें। अंकुरण के पश्चात् पौधों को विरला कर 8–10 सें.मी. अन्तराल बनाएं।

सिंचाई व निराई–गुड़ाई

पर्याप्त नमी सुनिश्चित करने के लिए गर्मियों में साप्ताहिक अन्तराल पर तथा सर्दियों में 15 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करें तथा यह स्मरण रखें कि नालियों की आधी मेंड़ों तक ही पानी पहुंचे। बुवाई के लगभग एक महीना पश्चात पौध छंटाई के समय शेष आधी नत्रजन की मात्रा के साथ–साथ मिट्टी चढ़ाने का कार्य करें जिससे खरपतवार नियंत्रण भी हो जाएगा।

खुदाई एवं पैदावार

गाजर की जड़ों की खुदाई तब करानी चाहिए जब वे पूरी तक विकसित हो जाएं। लगभग तीन महीनों में गाजर की जड़ें खुदाई के लिए तैयार हो जाती हैं। खेत में खुदाई के समय पर्याप्त नमी होनी चाहिए । बाजार भेजने से पूर्व जडों को अच्छी तरह से धो लेना चाहिए। इसकी पैदावार किस्म पर निर्भर करती है। औसतन 20 टन प्रति हेक्टेयर उपज हो जाती है।

कटाई व गहाई : जब दूसरी अम्बल या शीर्ष बीज पक जाएं तथा उनके बाद में आने वाले शीर्ष भूरे रंग के हो जाएं तो बीज फसल काट लेनी चाहिए क्योंकि बीज पकने की प्रक्रिया एकमुश्त नहीं होती। इसलिए कटाई 3–4 बार करनी पड़ती है। सुखाने के पश्चात् बीज को अलग कर लें और छंटाई करके वायुरोधी स्थान पर उनका भण्डारण करें।

बीज उपज : औसतन 400–500 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर बीज उपज हो जाती है।

प्रमुख रोग एवं नियंत्रण

रोग एवं रोग कारण	लक्षण	उपचार
सरकोस्पोरा पर्ण, पर्ण अंगमारी (Cercospora bed blight) **रोग कारकः** *सर्कोस्पोरा कैरोटी*	रोग के लक्षण, वर्णवृंतों तना तथा फल वाले भागों पर होता है। पत्ती की सतह पर धूसर, भूरे या काले, अर्द्व गोलाकार धब्बे दिखाई देते है। संक्रमित पत्तियां सिकुड़ जाती है तथा कवक की बढ़वार के कारण पत्तियां काली हो जाती है। पर्णवृन्तों पर लम्बवतः, गहरे रंग के धब्बे बनते है जो पर्णवृन्तों को चारो तरफ से घेर लेते है और पत्तियां मर जाती है।	• जल निकास की उचित व्यवस्था करें। • स्वस्थ एवं प्रमाणित बीजों का प्रयोग करें। • थाइरम 2.5 ग्राम/किग्रा. बीज की दर से बीजापचारित करें। • फसल में रोग के लक्षण दिखाई देने पर कवकनाशी जैसे मैंकोजेब (2.5 ग्राम/लीटर पानी) कापर आक्सीक्लोराइड (3.0 ग्राम/लीटर पानी) या क्लोरोथैलोनील (2.0 ग्राम/लीटर पानी) की दर से फसल पर छिड़काव करें।
स्क्लेरोटीनिया विगलन (Sclerotinia rot) **रोग कारकः** *स्क्लेरोशियम रोल्फसाई (Sclerotium rolfsii)*	भूमि के नीचे अचानक प्रौढ़ जड़ें सड़ने लगती है तथा प्रभावित जड़ प्रायः सफेद कवक जाल से ढकी होती है। जिस पर बहुत से भूरे रंग के स्क्लेरोशिया होते है। स्क्लेरोशिया तथा कवक जाल जड़ के पास भूमि में देखे जा सकते है। बाद में पत्तियां पीली तथा मुरझा जाते है।	• संक्रमित पौधों के अवशेषों को खेत से निकालकर नष्ट कर दें। • फसल–चक्र अपनाएं। • गर्मियों में गहरी जुताई करें। • कार्बोक्सिन 2 ग्राम या क्लोरेनेब 15 ग्राम/3 लीटर पानी में घोल बनाकर मृदा को सीचे।
पीला रोग (Yellow disease) रोग कारकः *फाइटोप्लाज्मा (Phytoplasma)*	पत्तियों की शिराएं पीली तथा चमकीली दिखाई देती हैं। पौधे का ऊपरी हिस्सा घने गुच्छे के रूप में दिखाई देता है। वर्णवृन्त तथा ऊपरी प्ररोहों की पोरिया छोटी हो जाते हैं।	• बहुवर्षीय खरपतवारों को खेत से निकालकर नष्ट कर दें। • खेत की सफाई रखें। • रोग वाहक कीट के नियंत्रण के लिए डाइमेथोएट या आक्सीमेथिल डिमेटान (0.1 प्रतिशत) का छिड़काव फसल पर करें।
चूर्णिल आसिता (पाउडरी मिल्ड्यू)	इस रोग का प्रकोप होने पर फसल की पत्तियां बुकनी जैसे पदार्थो से ढ़क जाती हैं।	• केराथेन (2 ग्रा./ली.) का छिड़काव रोग के प्रकट होने पर करें।

कीट प्रकोप एवं प्रबंधन

गाजर को वीविल (सुरसरी), जैसिड व जंग मक्खी नुकसान पहुंचाते हैं।

1. गाजर की सुरसुरी (कैरट वीविल)

इस कीट के सफेद टांग रहित शिशु गाजर के उपरी हिस्से में सुरंग बनाकर नुकसान करते हैं।

इस कीट की रोकथाम के लिए इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. 1 मि.ली./3 लीटर या डाइमेथोएट 30 ई.सी. 2 मि.ली./लीटर का छिड़काव करें।

2. जंग मक्खी

इस कीट के शिशु पौधों की जड़ों में सुरंग बनाते हैं जिससे पौधे मर भी जाते हैं।

इस कीट की रोकथाम के लिए क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी. का 2.5 लीटर/हेक्टेयर की दर से हल्की सिंचाई के साथ प्रयोग करें।

ग्रीनहाउस में सब्जी की व्यवसायिक खेती

पी.के. सिंह, डी.पी. सिंह, जोगेन्द्र कुमार एवं नीलम पटेल
संरक्षित कृषि प्रौद्योगिकी केन्द्र
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली – 110012

ग्रीनहाउस

यह प्लास्टिक, कीट अवरोधी नाइलोन नेट व जस्तीकृत इस्पात द्वारा निर्मित एक विशेष संरक्षित संरचना होती है। जिसमें वातावरण को काफी हद तक निंयत्रित करने की सुविधायें उपलब्ध रहती हैं। ग्रीनहाउस सामान्यतया तीन प्रकार के होते हैं।

(1) वातावरण नियंत्रित ग्रीनहाउस

इस प्रकार की संरचना में ग्रीनहाउस के अन्दर अधिक तापमान को कूलिंग पेड्स द्वारा कम करने तथा हीटर द्वारा ग्रीनहाउस के कम तापमान को बढाने हेतु दोनों सुविधायें उपलब्ध रहती है। लेकिन इस प्रकार की संरक्षित संरचना के निर्माण पर बहुत अधिक खर्च आता है। जो कि 2500–3000 रुपये प्रति वर्ग मीटर तक हो सकता है।

(2) आंशिक रुप से वातावरण नियंत्रित ग्रीन हाउस

इस प्रकार के ग्रीन हाउस में वातावरण को नियंत्रित करने की दो में एक ही सुविधा लगी रहती है। चाहे वह अधिक तापमान को कम करने हेतु **"कूलिंग पेड व फेन"** की सुविधा या फिर ग्रीनहाउस के तापमान को बढाने के लिए हीटर की सुविधा। लेकिन अधिकतर स्थानों के लिये कूलिंग पेट व फेन वाली सुविधा ही अधिक उपयोगी रहती है तथा इस प्रकार के ग्रीनहाउस निर्माण पर लगभग 1500–1800 रुपये प्रति वर्ग मीटर का खर्च आ सकता है।

(3) प्राकृतिक रुप से वायु संवाहित ग्रीनहाउस

इस प्रकार के ग्रीनहाउस में न तो कूलिंग पेड तथा न ही अन्दर के तापमान को गरम रखने के लिये हीटर होता है। इस प्रकार के ग्रीनहाउस में चारों ओर भूतल से लेकर लगभग 8 या 9 फुट की ऊँचाई तक कीट अवरोधी नेट लगा होता है। जिसके ऊपर बाहर की ओर प्लास्टिक लगा होता है जिसे पाइपों के द्वारा लपेटकर ऊपर या नीचे करना संभव होता है। गर्मी के दिनों में पाइपों के द्वारा लपेटकर ऊपर बाहर की ओर प्लास्टिक लगा होता है। जिसे पाइपों के द्वारा लपेटकर ऊपर कर दिया जाता है। ताकि ग्रीनहाउस के अन्दर व बाहर पूर्णतया प्राकृतिक रुप से हवा का आदान–प्रदान होता रहे। इस प्रकार के ग्रीनहाउस पर प्राथमिक तौर पर लगभग 1100–1200 रुपये प्रति वर्ग मीटर का खर्चा लगता है। इस प्रकार के ग्रीनहाउस में बिजली की कोई आवश्यकता नहीं होती है। क्योंकि इसमें साधारणतया कम दाब सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली का प्रयोग किया जाता है। जिसको चलाने हेतु भी बिजली की कोई आवश्यकता नहीं होती है। इस प्रकार के ग्रीनहाउस परिनगरीय क्षेत्रों (पेरी अरबन) में सब्जियों की खेती के लिये अत्याधिक उपयोगी होते हैं। इन तीनों प्रकार के ग्रीनहाउस बनाने के लिये आधारभूत ढांचे को जस्तीकृत इस्पात व एल्यूमिनियम धातुओं का उपयोग होता है। तथा उपरी छत को पारदर्शी प्लास्टिक जिसकी मोटाई लगभग 180–200 माइक्रोन होती है, से ढका जाता है। तथा चारों ओर जमीन की सतह से लेकर लगभग 8–9 फुट की ऊँचाई तक कीट अवरोधी (40 मेश) नाईलोन नेट से ढका जाता है। ठीक उसी प्रकार ग्रीन हाउस की छत में बने वेन्टीलेटर की जगह पर भी कीट अवरोधी नाईलोन नेट भी लगाया जाता है। प्रारम्भ में ग्रीनहाउसों का चलन कम तापमान वाले पश्चिमी देशों तक ही सीमित था लेकिन पिछले 2–3 दशक में इनका उपयोग विश्व के विभिन्न अन्य देशों तथा अन्य गर्म जलवायु वाले क्षेत्रों तथा अतिवृष्टि व रेतीले तथा अत्यधिक कम पानी वाले क्षेत्रों में भी किया जाने लगा है।

सब्जी उत्पादन

ग्रीनहाउस में उगाई जाने वाली उच्च गुणवत्ता व उच्च बाजार भाव देने वाली सब्जियों में बड़े आकार का

टमाटर, शिमला मिर्च (जिसमें पकने पर लाल व पीले रंग के फल हों) व बीज रहित खीरा प्रमुख है। इसके अतिरिक्त खरबूजा, चप्पन कद्दू, लौकी व करेला आदि सब्जियों का भी पूर्णतया बेमौसमी उप्पादन करके बाजार से अधिक भाव प्राप्त किये जा सकते है। लेकिन इस समय सब्जियों को ग्रीनहाउस जैसी संरक्षित संरचना में उगाने से पूर्व उनकी ग्रीनहाउस में लगाई जाने वाली किस्मों तथा उनकी पूरी उत्पादन तकनीकी की जानकारी होना प्रत्येक उत्पादक के लिये बहुत महत्पूर्ण व आवश्यक है।

किस्मों का चयन

टमाटर – ग्रीनहाउस में टमाटर की असीमित बढ़वार करने वाली किस्मों (Indeterminate Type Varieties) को ही उगाया जाता है। सामान्यतया इन किस्मों में फलों का भार 110 से 120 ग्राम तक होता है तथा मिठास एवं खटास की भी उपयुक्त मात्रा होती है। ऐसे फलों की तुड़ाई के बाद कई दिनों तक बगैर खराब हुए रखने की क्षमता होनी चाहिए। ग्रीनहाउस में चेरी टमाटर की किस्में भी असीमित बढ़वार करने वाले होती हैं जिसमें फलों का औसत भार 12–15 ग्राम प्रति फल होता है, तथा इन फलों के मिठास की मात्रा लगभग 7.0 प्रतिशत या अधिक होती है। तथा इन किस्मों में एक फल गुच्छे में लगभग 25–40 फल लगते है। ग्रीनहाउस में टमाटर लगाने के लिये उपयुक्त किस्मों के नाम निम्न प्रकार से हैं :

टमाटरः– जी.एस.– 600, हिमसोना, नोवारा, टॉलस्टॉय, हिमशिखर,सक्षम, न स 4266, नंबर–206 आदि चेरी टमाटर की किस्में :– एन.एस. चेरी 1, एन.एस. चेरी 2, पूसा चेरी सलैक्शन 1

शिमला मिर्च :– शिमला मिर्च की उपयुक्त किस्मों में फलों का भार 150–250 ग्राम तक होता है। तथा ये अधिकतर 4 लोब वाली होती हैं। शिमला मिर्च की इन्दिरा (लाल), बाम्बी (लाल रंग), ओरोबेली (पीला रंग), स्वर्णा (पीला रंग), नताशा (लाल रंग) आदि प्रमुख किस्में हैं जिन्हें ग्रीनहाउस में उगाकर अधिक उत्पादन लिया जा सकता है।

खीरा – ग्रीनहाउस में अधिकतर बीजरहित किस्मों (जांयागी किस्में) को ही उगाया जाता है, जिन्हें यूरोपीय किस्में भी कहा जाता है। इन किस्मों में पौधों पर मात्र मादा फूल ही आते है तथा बगैर परागण या फर्टीलाइजेशन के फलों का स्थापन व फलों का विकास होता है। इन किस्मों के फल बिल्कुल कड़वे नही होते हैं तथा इन किस्मों के फलों के बीज भी नहीं होते हैं। व इन फलों को खाने के समय छिलने की भी आवश्यकता नहीं होती है। खीरे की इस प्रकार की किस्मों में कियान सेटिस डिफेंडर अवीवा फड़िआ मल्टीस्टार व हिल्टॉन उगाने के लिये उपयुक्त है।

उत्पादन प्रोद्योगिकी

ग्रीनहाउस में फसलों का उत्पादन ड्रिप सिंचाई प्रणाली का उपयोग द्वारा ही किया जाता है। यह दाब ड्रिप सिंचाई प्रणाली या कम दाब वाली ड्रिप सिंचाई प्रणाली हो सकती है।

पौध तैयार करना व रोपाई

सर्वप्रथम किस्मों के चुनाव के बाद उनकी स्वस्थ पौध भी संरक्षित क्षेत्र जैसे पोलीहाउस या नर्सरी ग्रीनहाउस में ही प्लास्टिक की खानेदार ट्रे में भूरहित माध्यम (कोकोपीट, वर्मीकुलाइट व परलाइट को 3:1:1 अनुपात के आधार पर) के उपयोग द्वारा की जाती है। आमतौर पर टमाटर व खीरे की पौध 35–38 दिन में रोपाई योग्य हो जाती है।

पौध की रोपाई से पूर्व ग्रीनहाउस में जमीन से उठी हुई क्यारियाँ बनाई जाती है। जिनकी चौड़ाई 80–40 से.मी. हो सकती है तथा दो क्यारियों के बीच लगभग 40–45 से. मी. का स्थान खाली छोड़ा जाता है। क्यारियों को ट्रैक्टर चलित रोटावेटर द्वारा ही बनाया जा सकता है। अन्यथा ग्रीनहाउस का आकार छोटा होने पर इसे हाथों के द्वारा ही बनाया जा सकता है। क्यारियॉ बनाने के बाद प्रत्येक क्यारी पर दो ड्रिप पाइपों को 50–60 से.मी. की चौड़ाई पर डाला जाता है तथा इसके बाद टमाटर के पौधों को 50–60 से.मी. की दूरी पर शिमला मिर्च को 30–40 से.मी. तथा खीरे की पौधे को 30–40 से.मी. की पौधे से पौधे की दूरी पर रोपा जाता है। इस प्रकार 1000 वर्ग मीटर ग्रीनहाउस में टमाटर के लगभग 2600 – 2500 पौधे, शिमला मिर्च के 3800–4000 पौधे तथा खीरे के लगभग 3800–4000 पौधे समायोजित किये जाते है। उत्तर भारत के मैदानों

में टमाटर की रोपाई जुलाई के अन्त से लेकर अगस्त के मध्य तक की जाती है, जबकि शिमला मिर्च की रोपाई अगस्त के मध्य सितम्बर तक की जाती है। ग्रीन हाउस में खीरे की रोपाई अगस्त के अन्त में मध्य सितम्बर तक की जाती है। ग्रीनहाउस में खीरे की तीन फसलें उगाई जाती है। पहली फसल की रोपाई अगस्त के प्रथम सप्ताह में, दूसरी फसल की रोपाई अक्टूबर के दूसरे सप्ताह में जबकि तीसरी फसल की रोपाई फरवरी के प्रथम या द्वितीय सप्ताह में की जाती है।

फसलों में खाद व उर्वरक देना (Fertigation)

इन सब्जी फसलों में उर्वरक व सूक्ष्म तत्व ड्रिप सिंचाई प्रणाली के द्वारा ही दिये जाते हैं जिसे फर्टीगेशन कहते है। इसके लिए 1000 लीटर वाले स्टाक टैंक में लगभग 90 कि. ग्रा. अमोनियम नाइट्रेट, मोनो पोटेशियम फास्फेट (0:52:34), 25 कि.ग्रा. म्यूरेट आफ पोटाश या 40 कि. ग्रा. पोटेशियम नाइट्रेट तथा 30 कि.ग्रा. कैल्शियम नाईट्रेट नामक उर्वरकों को घोलकर स्टाक घोल बनाया जा सकता है। अब इस घोल में से सब्जी फसलों की रोपाई के 7–10 दिन बाद लगभग एक लीटर घोल को प्रति 1000 लीटर सिंचाई जल के साथ फर्टीगेशन के उपयोग में लिया जाता है। सिंचाई जल की मात्रा पूर्णतया मौसम भूमि के प्रकार व फसल की अवस्था पर निर्भर करती है। लेकिन यह मात्रा गर्मी में सप्ताह में दो बार (5000–6000 लीटर पानी एक बार में) उर्वरक घोल की मात्रा फसल की बढ़वार के साथ बढ़ाई जाती है। तथा जब टमाटर, शिमला मिर्च या खीरे की फसल पूर्णतया फलत में होती है तो यह मात्रा 3.0 ली. / 1000 लीटर पानी की दर तक फर्टीगेशन प्रणाली के द्वारा दी जाती है। सूक्ष्म तत्वों को फर्टीगेशन या पर्णीय छिड़काव दोनों प्रकार से ग्रीनहाउस सब्जी फसलों में दिया जाता है।

कटाई– छंटाई व फसल को सहारा देना

ग्रीनहाउस सब्जी फसलों जैसे टमाटर, शिमला मिर्च, व खीरे में पौधे की कटाई छंटाई व सहारा देकर लपेटना एक महत्वपूर्ण कार्य है जिसे सह–कुशल मजदूरों द्वारा किया जाता है। टमाटर में रोपाई के 20–25 दिन बाद यह कटाई – छंटाई व रस्सियों के द्वारा सहारा देकर लपेटने की प्रक्रिया शुरु की जाती है तथा इसे फसल के अन्त तक (9–10 माह) तक जारी रखा जाता है। मुख्य शाखा जिन पर फूलों के गुच्छे लगते है, उन्हें बगैर नुकशान पहुँचाये पौधों को रस्सियों के सहारे लपेटा जाता है। ये रस्सियाँ क्यारियों के समान्तर 8–9 फुट के ऊँचाई पर स्थापित की जाती है। तथा इन्हें जमीन के पास लाकर प्रत्येक पौधे को एक रस्सी के द्धारा लपेटा जाता है। बाद मे पौधे मे आने वाली समस्त अन्य शाखाओ को कटाई छंटाई के द्धारा हटा दिया जाता है। पौधे जब 8–9 फुट उपर जा रहे मुख्य तारों के पास पहुँचते है तो उन्हे हर 15–20 दिन मे 1–2 फुट नीचे कर दिया जाता है। प्रत्येक पौधे के लिये मुख्य तौर पर 40–50 फुट लम्बी रस्सी को एक छोटी चरखी के साथ लपेट कर रखा जाता है। रस्सी को आवश्यकतानुसार नीचे की ओर खोलने की व्यसस्था रहती है। शिमला मिर्च मे रोपाई के 25–30 दिन बाद कटाई छटाई का कार्य शुरू किया जाता है तथा इसके लिये प्रत्येक पौधे पर मुख्य तार से दो रस्सियाँ नीचे जमीन स्तर तक डालकर उन्हे जमीन के पास तने पर लपेटा जाता है। पौधो मे प्रथम टर्मिनल फूल आने के बाद उसे हटाकर दो शाखओ मे बाँट दिया जाता है तथा प्रत्येक पौधो की शाखा पर दो पत्ती एक फूल छोडते हुये ऊपर की ओर बढते जाते है। पौधो को बड़ी सावधानी के साथ रस्सियो के सहारे फूलो व पौधो को बगैर नुकसान पहुँचाये लपेटा जाता है। यह प्रकिया 20–25 दिन में दोहराई जाती है तथा 8–9 महीने तक जारी रहती है। खीरे की बीजरहित किस्सो मे कटाई छटाई का कार्य काफी साधारण है। क्योंकि इस फसल मे प्रत्येक पौधे पर प्रारम्भ से एक मुख्य शाखा ही बढने दी जाती है। तथा मुख्य तार से भी प्रत्येक पौधे के लिए एक ही रस्सी प्रयोग में ली जाती है। प्राराम्भ में पौधा कुछ शाखायें पैदा करता है लेकिन बाद में कटाई–छंटाई के बाद पौधा एक ही शाखा बनाये रखता है। तथा इसे रस्सी के सहारे लपेटते हुये ऊपर की ओर चलते जाते है। एक फसल की पूरी अवधि 75–90 दिन की होती है।

परागण

वैसे तो टमाटर व शिमला मिर्च दोनों स्वपरागित फसलें हैं लेकिन ग्रीनहाउस जैसी संरक्षित संरचना में हवा का बहाव न होने के कारण टमाटर की फसल में सफल परागण नहीं हो पाता है। अतः ग्रीनहाउस टमाटर की फसल में बैटरी से

चलने वाले वाइब्रेटर द्वारा सफल परागण प्रक्रिया पूर्ण की जाती है। शिमला मिर्च में सहायक परागण की आवश्यकता नहीं होती है। खीरे की बीजरहित किस्में, जिनमें मात्र मादा फूल ही आते है। अतः खीरे की गाइनोशियस किस्सों के उत्पादन में परागण की कोई आवश्यकता नहीं होती है।

फलों की तुड़ाई व संभावित उपज

टमाटर में रोपाई के 75–85 दिन बाद फल पककर तुड़ाई के लिये तैयार हो जाते हैं तथा फलों को गुच्छे से एक–एक करके केलिक्स के साथ ही तोड़ी जाता है तथा सप्ताह में 3–4 बार फलों की तुड़ाई की जाती है। टमाटर में 9–10 महीने की अवधि में लगभग 150 से 180 कुंटल फल उपज/1000 वर्ग मीटर ग्रीनहाउस से प्राप्त की जा सकती है।

शिमला मिर्च में आमतौर पर लाल व पीले रंग के फलों को ही तोड़ा जाता है। ये फल रोपाई के लगभग 85–90 दिन बाद तोड़ने के लिये तैयार हो जाते हैं तथा 8–9 माह की अवधि में 1000 वर्ग मीटर ग्रीनहाउस से लगभग 30–40 कुंटल रंगीन फल की उपज प्राप्त हो जाती है।

खीरे की बीजरहित किस्मों की 9–10 माह अवधि में तीन फसलें उगाई जाती हैं तथा इन तीनों फसलों से लगभग 100–120 कुंटल उपज प्रति 1000 मीटर के ग्रीनहाउस से प्राप्त हो जाती है।

फसल संरक्षण

आमतौर पर ग्रीनहाउस सब्जियों में अधिक कीड़ों या रोगों का प्रकोप नहीं होता है। परन्तु निरंतर निरीक्षण व सामयिक रोकथाम आवश्यक है। टमाटर की फसल में यदि कोई भी पौधा विषाणु रोग से ग्रस्त हो तो उसे अविलम्ब उखाड़ कर प्लास्टिक आदि के बैग में बन्द करके बाहर निकालना चाहिए ताकि यह रोग दूसरे पौधों में न फैल पाये। कई वर्षो तक लगातार खेती करने के बाद भूमि से लगने वाले कवक जनित रोग व सूत्रकृमियों को प्रकोप बढ़ जाता है। जिन्हें गर्मी में सोलेराइजेशन (Solarization) द्वारा या फार्मलडिहाइड नामक दवा द्वारा भूमि को कीटाणुरहित करके काफी हद तक रोकथाम की जा सकती है। लेकिन शिमला मिर्च व खीरे की फसल को माईटर (Mites) नामक कीट बहुत नुकसान पहुँचाते हैं। यह कीट अधिक तापमान व हवा में अधिक आर्द्रता होने की स्थिति में अधिक प्रकोप करता है। अतः इसकी रोकथाम के लिये फसल समाप्त होन के बाद ग्रीनहाउस की पूरी तरह सफाई करना अत्यन्त आवश्यक है तथा फसल में रोकथाम हेतु प्रारम्भ से ही इसकी लगातार निगरानी करके कीटनाशकों जैसे डाइकोफोल 2.0 मि.ली. दवा/लीटर पानी या फोस्माईट 1.5 मि.ली. दवा 1 लीटर पानी में घोलकर फसल पर छिड़काव करें लेकिन छिड़काव पत्तियों के निचली तरफ जरुर जाना चाहिये। क्योंकि ये कीट पत्तियों की निचली सतह पर ही रहते हैं। इसके अतिरिक्त कभी–कभी शिमला मिर्च में कवक जनित रोग पाउडरी मिल्डयू का प्रकोप भी होता है तथा यह रोग खीरे की फसल में भी वातावरण की अनुकूल अवस्थायें होने पर लगता है। जिसे कवकनाशी दवायें जैसे मेंक्कोजेब 2.0 ग्राम दवा 1 लीटर पानी में घोलकर लक्षण दिखाई देने पर अविलम्ब छिड़काव करना चाहिये। आर्द्रगलन जैसी कवक जनित रोग की रोकथाम के लिये फसल में डिब्बे द्वारा केप्टान नामक दवा के घोल (2.0 ग्राम/लीटर पानी) से सिंचाई करनी चाहिये।

जो मजदूर ग्रीनहाउस में कटाई–छंटाई आदि कार्य करते हैं उनके कपड़े व हाथ साफ होने चाहिये। तथा वे खुले खेतों में कार्य करके ग्रीनहाउस में नहीं जाये बल्कि पहले ग्रीनहाउस के कार्य करके बाहर कार्य कर सकते है। कटाई छंटाई में उपयोग होने वाली कैंची या चाकू आदि को प्रयोग में लेने से पूर्व कीटाणुरहित करना अवश्यक है। जिसके लिये इन यन्त्रों को सोडियम हाइपोक्लोराइड नामक अम्ल के 1.0 प्रतिशत घोल में डुबो कर व साफ पानी में धोकर प्रयोग में लेना चाहिए। कार्य करने वाले मजदूर ग्रीनहाउस में बीड़ी या तम्बाकू का सेवन न करें और यदि बाहर सेवन किया है तो आपने हाथ अच्छी प्रकार से धोकर ही ग्रीनहाउस फसलों का कार्य करें।

उच्च आय हेतु गुलाब की उन्नत खेती

नमिता, एम के सिंह, सपना पंवर एवं बबिता सिंह
पुष्प विज्ञान एवं भूदृश्य निर्माण संभाग
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली – 110 012

फूलों का प्रयोग जन्म से लेकर मनुष्य के अंतिम समय तक एवं किसी भी उत्सव में होता रहा है। पुराने समय में फूलों को घर आँगन में उगाकर धार्मिक उपयोग के लिए ही किया जाता था परन्तु आज उद्यान विज्ञान के विविध उद्योगों में पुष्प उद्योग को एक बहुत ही महत्वपूर्ण अवयव माना गया है। गुलाब पुष्प उद्योग का एक महत्वपूण फूल है, एवं इसे फूलों की रानी के नाम से भी जाना जाता है। गुलाब की खेती प्राचीन समय से फ्रांस, साइप्रस, ग्रीस, भारत, ईरान, इटली मोरक्को, अमरीका तथा बुल्गारिया में इत्र उत्पादन के लिए होती आ रही है। भारत में इसकी बहुत सी प्रजातियां हिमालय की पर्वत श्रृखंलाओं में जंगली रूप में पायी गई हैं। गुलाब एक कर्तित पुष्प है, जिसका विश्व में व्यापक रूप से व्यापार किया जाता है। गुलाब का उत्पादन महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, राजस्थान, हरियाणा तथा पश्चिम बंगाल, आदि राज्यों में किया जा रहा है। सुगंधित गुलाब की खेती मुख्यतः अलीगढ, कन्नौज, गाजीपुर, बलिया एवं जौनपुर उ. प्र. में, राजस्थान में हल्दीघाटी, चण्डीगढ के निकट और तमिलनाडु में की जाती है। गुलाब अपनी उपयोगिताओं के कारण सभी पुष्पों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह सबसे पुराना सुगन्धित पुष्प है, जो मनुष्य के द्वारा उगाया जाता था। गुलाब का प्रयोग मुख्य रूप से धार्मिक स्थलों, विभिन्न त्योहारों, शादी–विवाह के मंडपों आदि के सौन्दर्यकरण व गुलदस्ते बनाने में किया जाता है। गुलाब एक महत्वपूर्ण बहुवर्षीय पौधा है जो कि झाडी के रूप मे, स्टैण्डर्ड, लताओं, किनारों पर तथा राक गार्डन में उपयोग किया जाता है। गुलाब को व्यावसायिक रूप में उपयुक्त पात्रों (गमलों) में उगाया जाता है। जो कि घरों के अन्दर तथा बाहर दोनों जगह रखा जाता है। गुलाब से बने उत्पादों को औषधि के रूप में उपयोग किया जाता है। इसके अलावा गुलाब को इत्र, गुलाब जल तथा गुलकन्द बनाने के लिए भी प्रयोग किया जाता है।

गुलाब के पौधों को उन पर आने वाले फूलों के आधार पर विभिन्न वर्गो में बॉटा जाता है।

हाइब्रिड टीजः यह गुलाब का सबसे महत्वपूर्ण वर्ग है। इस वर्ग के फूलों की कलियां आकार में लम्बी तथा देखने में सुन्दर लगती हैं। इस वर्ग की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कलिका से फूल बनने में समय लगता है तथा धीरे –धीरे कलिका खुलती है। फूल की डन्ड़ी भी लम्बी होती है। इसमें अनेक रंग के फूल पाये जाते हैं, परन्तु बाजार में लाल, नारंगी, पीला एवं कुछ अन्य गहरे रंग के फूल ही अधिक पसन्द किए जाते है। हाइब्रिड टीज गुलाब की किस्में फस्ट रेड, एवन, हैप्पीनेस, मि0 लिंकन, रक्त गन्धा, ब्लैक लेडी, मान्टे जुमा, गोल्ड मेडल, गोल्डेन स्टार, पूसा सोनिया, सुपर स्टार, समर हालीडे, प्रेसीडेन्ट, ग्रान्ड गाला, मदहोश, डबल डिलाइट, सुप्रिया, अभिसारिका, किस आफ फायर, टाटा सेन्टिनरी, एफिल टावर, ओकलाहोमा आदि है।

फ्लोरीबन्डाः इस वर्ग के गुलाब के पौधों पर फूल तो बहुत अधिक आते हैं, परन्तु फूल खिलने के कुछ समय बाद ही बिखर जाते हैं। इसलिए इस वर्ग के पौधों का प्रयोग सजावट के लिए, क्यारियों में लगाने के लिए अधिक किया जाता है। इस वर्ग में उगायी जाने वाली प्रमुख सफेद, गुलाबी, पीला, नारंगी, किस्में आइसवर्ग, समर स्नो, मार्गरिट मेरिल, चितचोर, चन्द्रमा, प्रेमा, सदाबहार, किंग आर्थर, ब्राइडल, आर्थर बेल, डाक्टर फाउस, आलगोल्ड, सी पर्ल, गोल्डेन टाइम, नीलम्बरी, एन्जिल फेस, अफ्रीका स्टार, डोरिस नारमन, सूर्यकिरण, जोरिना, जैम्ब्रा,एन्जिल फेस, दहली प्रिन्सिस आदि है।

पोलीएन्थाः इस वर्ग के पौधे छोटे तथा फूल गुच्छे में आते हैं। फूलों का आकार भी छोटा होता है। इस वर्ग की प्रमुख किस्में हैं – अंजनी, रश्मि, नर्तकी, प्रीति, स्वाति इत्यादि।

मिनिएचरः इस वर्ग के पौधे आकार में छोटे तथा इनकी

टहनियाँ, पत्तियाँ आदि भी छोटी–छोटी होती हैं। इनके फूलों को पुष्प विन्यास के लिए भी प्रयोग किया जाता है। इस वर्ग की प्रमुख किस्में हैं – ब्यूटी सीक्रेट, डार्क ब्यूटी, ग्रीन आइस, जेड ट्रेल, ऐनी, विन्डी सिटी, स्वीट फेयरी, डिजलट, बेबी गोल्ड स्टार, केल गोल्ड, देहली स्टार लेट इत्यादि।

लता गुलाबः इस वर्ग के पौधों की शाखायें मुलायम होती है तथा बेल की तरह फैलती है। फूल किनारे वाली शाखाओं के शिरों पर, छोटे–छोटे गुच्छों में आते हैं। प्रमुख किस्में क्लाइमिंग क्रिमसन ग्लोरी, ब्लेज, काकटेल, ब्लैक बॉय, देहली व्हाइट पर्ल, सेल्डरर्स व्हाइट, रैम्बलर, अमेरिकन पियर, लैमाक, क्लाइमिंग शो गर्ल, लेडी वाटर लू, क्लाइमिंग आफ सिल्क, साफ्ट सिल्क, मैरिकल नील, आल गोल्ड, गोल्डन शावर, इत्यादि है ।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित प्रमुख किस्मेंः

हाल ही में गुलाब की किस्में जारी की गयी थी जो लॉन/बगीचे के लिए उपयुक्त हैं जिनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है।

पूसा महकः पूसा महक एक हाइब्रिड टी श्रेणी की गुलाब की प्रजाति है। इसके पौधे लम्बे (100–120 सें.मी.) तथा जोरदार वृद्धि वाले होते हैं। इसके गहरे गुलाबी रंग के पुष्प अत्यधिक खुशबू वाले तथा बड़े आकार के होते हैं। इसके पौधे कटाई–छंटाई के 40–45 दिन बाद फूल देना शुरू कर देते हैं। यह किस्म साल में कई बार फूल देती है। सुगन्धित फूलों के कारण यह प्रजाति उद्यानों में उगाने के लिए अति उपयुक्त है तथा प्रभावी सुगंध के कारण इसके फूलों की महत्ता, पुष्प सज्जा हेतु भी बढ़ जाती है।

पूसा शताब्दीः यह किस्म बहुत आकृषित हल्के गुलाबी रंग के फूल पैदा करती है जिस पर पंखुड़ियों की संख्या 35–40 तक होती हैं। इस किस्म में चूर्णी फंफूदी तथा पत्ती धब्बा रोगों से मध्यम रूप से सहन करने की क्षमता होती है। इसके फूल हल्की खुशबू, जो कर्तित एवं नुमाइश के लिए उपयुक्त है। फूलों की पैदावार 20–30 फूल शरद ऋतु में तथा 35–40 फूल प्रति पौधा वसन्त ऋतु में पैदा हो जाते हैं। यह किस्म उत्तरी मैंदानों के लिए उपयुक्त है।

पूसा अजयः इसकी पत्तियाँ भी रंगीली जैसी चिकनी होती हैं जिस पर गहरे गुलाबी रंग के फूल तथा 35–40 पंखुड़ियों के साथ लगे रहते हैं। इस किस्म पर बार–बार फूल आते हैं, यह भी चूर्णी फंफूदी तथा काला धब्बा रोगों से लड़ने के लिए मध्यम रूप से सहन करने की क्षमता रखती है। यह किस्म भी कर्तित एवं नुमाइश के लिए उपयुक्त है तथा फूलों में हल्की खुशबू होती है। यह किस्म उत्तरी मैंदानों के लिए उपयुक्त है। फूलों की पैदावार 15–20 फूल प्रति पौधा शरद ऋतु में तथा 35–40 वसन्त ऋतु में मिल जाता हैं।

पूसा मोहितः यह किस्म काँटा रहित होती है, पंखुड़ियों का रंग लाल जो विपरीत दिशा में भी होता है। फूलों की पैदावार 20 फूल प्रति पौधा शरद ऋतु में तथा 45 फूल वसन्त ऋतु में मिल जाते हैं। यह किस्म काला धब्बा रोग को सहन कर लेती है तथा उत्तरी मैदानी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है।

पूसा अरूणः इस किस्म पर बड़े आकार के लम्बी टहनी पर गहरे लाल रंग के फूल आते है, पंखुड़ियाँ मोटी–माँसल जैसी होती है जिनकी संख्या 38–40 तक प्रति फूल होती है। यह किस्म लाल खपरा तथा चूर्णीफंफूदी को सहन कर लेती है। फूलों में हल्की खुशबू होती है जो कर्तित एवं नुमाइश के लिए उपयुक्त है। शरद ऋतु में 20 फूल तथा वसन्त ऋतु में 35–40 प्रति पौधा पैदावार हो जाती है। उत्तरी मैदानी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है।

पूसा कोमलः यह किस्म भी पूरी तरह से कांटे रहित होती है जिस पर 60 फूल प्रति पौधा होते हैं। फूल गुच्छों में पैदा होते हैं जिनका रंग बहुत ही आकर्षक एवं गुलाबी होता है। एक फूल में 50–60 तक हल्की गुलाबी रंग की पंखुड़ियाँ होती है। यह किस्म भी मध्यम रूप से चूर्णी फफूंदी, काला धब्बा रोगों एवं थिप्स जैसे कीड़ों से लड़ने की क्षमता रखती है। यह किस्म गमले एवं क्यारियों में उगाने के लिए उपयुक्त है तथा फूलों में मध्यम रूप से खुशबू भी होती है।

जलवायु तथा वातावरण

तापमानः तापमान पौधों की वृद्धि को नियंत्रित करने वाला एक महत्वपूर्ण कारक है। गुलाब के पौधों को ऐसे स्थान

पर लगाया जाता है, जहां वर्ष भर प्रकाश मिलता रहें। दिन का तापमान 20–25^0 सेन्टीग्रेड तथा रात का तापमान 15–180 सेन्टीग्रेड बना रहे, तो अच्छे पुष्प प्राप्त होते हैं। कम तापमान के कारण गुलाब के पौधों से जाड़े के मौसम में उत्तम गुणवत्ता के फूल प्राप्त होते है।

प्रकाशः गुलाब के पौधों को 12 घन्टे से कम प्रकाश मिलने पर फूलों की संख्या कम हो जाती है तथा गुणवत्ता पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ता है।

आर्द्रताः आर्द्रता बीमारियों और कीटों को फैलाने मे मुख्य भूमिका निभाता है। वायुमंण्डल मे ज्यादा आर्द्रता होने से गुलाब के पौधे की पत्तियों पर पानी की बूदें जमा हो जाती हैं, जो कुछ समय तक यदि उन पर बनी रहें तो कई प्रकार की फफूँदी वाली बीमारियां पौधों में आ सकती है। कुछ बीमारियां जैसे मिल्डयू (फफूदी) आदि आर्द्रता से प्रभावित होती हैं।

भूमि की तैयारी : भूमि की तैयारी का गुलाब की अच्छी पैदावार पर प्रभाव पडता है। यद्यपि गुलाब की खेती किसी भी प्रकार की मृदा में की जा सकती है जिसका जल निकास उचित है। भूमि भुरभुरी हो, कंकड, पत्थर, ईट, भूमि से निकाल दें तथा एक सप्ताह के लिये खुला छोड़ दें। गुलाब की खेती के लिए अधिक कार्बनिक पदार्थ युक्त हल्की दोमट मिट्टी उपयुक्त होती है। मिट्टी का पी0एच0 मान 6.0–7.5 के मध्य होना चाहिए। मिट्टी 50 सेन्टीमीटर गहराई तक भुरभुरी हो तो तथा जल निकास की अच्छी व्यवस्था हो। मृदा को मिट्टी के ढेले, कंकड, पत्थर और अन्य दूसरे पदार्थ से मुक्त होना चाहिए।भूमि की तैयारी करते समय ही यदि उसमें कार्बनिक पदार्थ की कमी है, तो बाहर से कार्बनिक पदार्थ मिला कर 10–12 प्रतिशत तक कर देना चाहिए। भूमि तैयार करने के बाद 1 से 1.5 मीटर चौड़ी तथा 30–40 मीटर लम्बी क्यारियां बना लेनी चाहिए। वर्षा शुरू होने से पहले गड्ढे खोद लेने चाहिए जिससे कि बरसात के दौरान मिट्टी अच्छी प्रकार से बैठ जाये। गड्ढे 20 सेमी0 से 30 सेमी. चौड़े तथा 30 सेमी. गहरे तैयार करने चाहिए।

दूरीः गुलाब की प्रजाति तथा जगह के आधार पर उसकी दूरी निर्भर करती है। सामान्तयः गुलाब को 45-60 सेमी. की दूरी पर लगाते है लेकिन यह दूरी जाति विशेष यानि के फैलाव के अनुसार कम या ज्यादा की जा सकती है। गुलाब के पौधों का लगाने उचित समय अक्टूबर–नवम्बर माह है।

गुलाब की पौध तैयार करनाः गुलाब की पौध तैयार करने (बडिंग) के लिए 15 दिसम्बर से 15 फरवरी का समय सबसे अच्छा होता है। इसके लिए पहले तैयार की गयी देशी गुलाब की पौध पर टी बडिंग अथवा शील्ड बडिंग विधि से इंगलिश गुलाब की आँख (कलिका) निकाल कर उसमें अच्छी तरह बिठाकर पॉलीथीन की पट्टी से कस कर बांध दिया जाता है। देशी गुलाब की *रोजा इन्डिका* वैराइटी *ओडोरेटा* किस्म उत्तर भारत में अधिक प्रचलित है। दक्षिण भारत में, भारतीय उद्यान अनुसंधान संस्थान बंगलौर द्वारा एक बिना कांटे वाली, देशी गुलाब की किस्म विकसित की गई है, उस पर बडिंग कर पौधे तैयार करना आसान होता है।

पौधों की रोपाईः पहले तैयार की गयी क्यारियों में, पौधे से पौधे एवं लाइन से लाइन की दूरी 45 × 60 सेन्टीमीटर रखते हुए रोपाई की जाती है। वैसे जाड़े के मौसम में रोपाई कभी भी की जा सकती है। रोपाई हमेशा शाम के समय करें, रोपाई के तुरन्त बाद हल्की सिंचाई करना आवश्यक होता है। रोपाई के समय यह ध्यान रखें कि जितना पौधा पहले जमीन के अन्दर था, रोपाई के बाद भी उतना ही अन्दर रहे। भारत के मैदानी इलाकों मे रोपाई का सबसे अच्छा समय सितम्बर से अक्टूबर रहता है एवं पहाडी इलाकों अक्टूबर से नवम्बर या फरवरी से मार्च का होता है।

पोषणः अक्टूबर के पहले दूसरे सप्ताह में कटाई–छटाई के तुरन्त बाद गुलाब के तने के चारों तरफ की मिट्टी को 10–15 से.मी.की गहराई तथा उतनी ही गोलाई में निकल लेते है। पौधों को 4–5 दिन के लिए ऐसे ही छोड़ देते है। जिससे मिट्टी की नमी कम हो जाये और अब प्रत्येक पौधें के चारों ओर खुदी हुई जगह में 4–5 किलोग्राम सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट भर दें। शेष भाग को निकाली हुई मिट्टी से भर देते है। और तुरंत गहरी सिंचाई कर देते है। एक–दो सप्ताह बाद जब खेत काम करने

योग्य हो जाये तो रासायानिक खाद 50 से 100 ग्राम प्रति पौधें के हिसाब से पौधें के मुख्य तने से 15–20 से.मी. दूरी पर, चारों तरफ भूमि में बिखेर देतें है। और मिट्टी में अच्छी तरह मिलाकर पानी लगा देते है। रासायानिक खाद के मिश्रण में 1 भाग यूरिया, 3 भाग सिंगलसुपर फॉस्फेट तथा 2 भाग पोटेशियम सल्फेट ठीक रहता है। गुलाब के लिए जरूरी पोषक तत्वों को पत्तियों भी दिया जाता है। इसके लिए दो भाग यूरिया, एक भाग (डी.ए.पी.), एक भाग पोटेशियम नाइट्रेट और 1 भाग पौटैशियम फॉस्फेट का 30 ग्राम मिश्रण को 10ली. पानी में मिलाकर बनाना चाहिए।

सिंचाईः पहली सिंचाई रोपाई के तुरन्त बाद करें। इसके पश्चात् आवश्यकतानुसार गर्मी में 4–5 दिन के अन्तर पर तथा जाड़ों में 10–15 दिन के अन्तर पर सिंचाइ करनी चाहिए। बरसात में आमतौर पर सिंचाई नही करनी चाहिए सूखे की दशा मे सिंचाई करना आवश्यक है।

खरपतवार नियंत्रणः गुलाब की खेती मे खरपतवार की बहुत अधिक समस्या होती है। अधिक खाद एवं सिंचाई द्वारा फसल मे बहुत अधिक एक बीज पत्रीय तथा द्वि बीज पत्रीय खरपतवार उग आने के कारण पौधों का विकास कम हो जाता है। खरपतवार केवल पानी तथा पोषक तत्व ही भूमि से नही लेते बल्कि ये बहुत सी बीमारियों तथा कीटो को फैलाते है। द्वि बीज पत्रीय खरपतवारों की रोकथाम के लिए 2,4–डी, की दो किलोग्राम मात्रा को 600 लीटर पानी मे घोल कर फूल आने से पहले छिडकाव करें और 6–10 सेमी0 तक जमीन की खुदाई कर दें।

अन्तः सस्य क्रियायेः

पौधों की काट–छॉटः गुलाब एक सदा बहार पौधा है। यदि इसकी काट–छाँट न की जाय तो, वर्ष भर फूल देता रहेगा, परन्तु फूलों की गुणवत्ता काफी खराब हो जायेगी। इसलिए वर्ष में एक बार पौधे को आराम देने तथा पूरे वर्ष के लिए आवश्यक पोषक तत्व देने के लिए पौध की कटाई–छँटाई करना आवश्यक होता है। कटाई–छँटाई का सबसे अच्छा सबसे अच्छा समय अक्टूबर का प्रथम पखवाड़ा होता है। पौधों की कटाई–छँटाई इस प्रकार करें कि पौधों का फैलाव बाहर की ओर हो, जिससे पौधों को अधिक धूप मिल सके। अधिक धूप मिलने से फूलों की गुणवत्ता अच्छी होती है। गुलाब की कटाई–छँटाई के तुरन्त बाद कटे भागों पर डाइथेन एम–45 का 2 ग्राम प्रति ली0 पानी के हिसाब से छिड़काव करना चाहिये। पौधों की काट–छांट के तुरन्त बाद ही पौधो के चारों ओर लगभग एक फुट की गोलाई में खोदते हुये 6–9 इंच गहराई तक की मिट्टी निकाल दी जाती है। इसी के साथ–साथ केवल मुख्य जड़ को छोड़ते हुए बाकी सभी जड़ों को भी धीरे–धीरे निकाल दिया जाता है। इन गड्ढों को 6 से 8 दिन तक खुला रखा जाता है। इसके बाद इस में मिक्चर तैयार कर भर दिया जाता है। मिश्रण में 5 से 6 किलोग्राम गोबर की सड़ी खाद, 100 से 150 ग्राम हड्डी का चूरा या बौनमील, 50 ग्राम यूरिया, 100 ग्राम सिंगल सुपर फास्फेट, 50 ग्राम म्यूरेट आफ पोटाश के साथ–साथ 40–50 ग्राम कोई भी कीटनाशी पाउडर मिला दिया जाता है। यह सभी मात्रा केवल एक पौधे के लिए है। सभी घटकों को अच्छी तरह मिलाकर मिट्टी के साथ गड्ढ़ों में भर दिया जाता है तथा तुरन्त हल्की सिंचाई कर दी जाती है। प्रथम फूलों की तुड़ाई के बाद रासायनिक खादों की उपरोक्त मात्रा पुनः जमीन में पौधे के तने से 20–25 सेन्टीमीटर की दूरी पर जमीन में मिला दी जाती है।

पुष्पों की कटाईः

सामन्यतः पौधों को सख्त कलिका की अवस्था में जब एक या दो पंखुडिया खिलना शुरू होती है अगर फूलों को जल्दी तोड़ लिया जाता है तो कार्बोहाइड्रेट कम होने की वजह से फूल नहीं खिलते हैं। इसके अलावा, पुष्प डण्डी के उपरी भाग की पूर्ण कठोरता न होने की वजह से पेन्डुकल कली के भार को नहीं सह पाता है और डण्डी के उपरी भाग से कली झुक जाती है। इसके 'बेन्ट नेक' कहते है। फूलों की कटाई का सबसे उत्तम समय सुबह 6 बजे अथवा शाम को 4 बजे से 6 बजे तक होता है। सामन्यतः पुष्प डण्डी को जहां से डण्डी निकल रही है उसके पहले पत्ती के उपर से काट लेना चाहिए। तेजधार वाली कैंची से फूलों को काटकर तुरन्त ही पानी से भरी बाल्टी में रख देना चाहिए तथा बाद में पानी के अन्दर ही नीचे से एक इंच तना और काट दिया जाता है, जिससे पूर्व में तने के

अन्दर जो हवा चली गयी थी, उसका स्थान पानी ले ले। फूलों को पैक करके यदि ठन्डे कमरे में जिसका तापमान 5–70 सेन्टीग्रेड हो, एक या दो घन्टे रखा जाय तो फूलों को सुरक्षित रखने का समय (वेस लाइफ) बढ़ जाता है।

फूलों की ग्रेड़िगः फूलों के रंग अथवा तने की लम्बाई के हिसाब से उनकी छँटाई कर ली जाती है। फूलों को ग्रेडिंग करने से पहले देख लें उनमें निम्न लिखित गुण होने चाहिये

1. फूलों की डन्डी मजबूत होनी चाहिए।
2. फूलों की पत्तियाँ तथा फूल स्वस्थ होना चाहिए।
3. फूल, डन्डी व पत्तियाँ बीमारी व कीड़े से मुक्त होने चाहिए तथा उन पर किसी प्रकार का निशान या धब्बा नहीं लगा होना चाहिए।

यदि उपरोक्त गुण है तो फूलों को निम्न ग्रेड में बांट देना चाहिए –

प्रथम ग्रेड – > 80 सेन्टीमीटर डन्डी की लम्बाई

द्वितीय ग्रेड – 60–80 सेन्टीमीटर डन्डी की लम्बाई

तृतीय ग्रेड – 40–60 सेन्टीमीटर डन्डी की लम्बाई

चतुर्थ ग्रेड – 30–40 सेन्टीमीटर डन्डी की लम्बाई

उपरोक्त भिन्न–भिन्न ग्रेड करने के साथ 12 या 24 फूलों को एक साथ बांधकर पानी में रखकर (स्थानीय बाजार के लिए) या गत्ते के डिब्बों मे पैक कर दूर के बाजार के लिए कोल्ड स्टोरेज में रख देते हैं।

पैकिंगः

फूलों की ग्रेडिंग करने के बाद उनके बंडल बना लिए जाते हैं। 12–24 अथवा आवश्यकतानुसार फूलों के बन्डल बना कर पैकिंग के लिए विशेष प्रकार के कागज में पैक कर रबर बैन्ड लगा दिए जाते हैं। हर बंडल को कार्ड बोर्ड के डिब्बे में रख दिया जाता है, जिससे फूल रास्ते में हिलने–डुलने से खराब नहीं होते। ऐसा करने के पश्चात् फूलों को कोल्ड स्टोरेज में रख देते हैं। डिब्बे का आकार आम तौर पर 100 × 40 × 40 सेन्टीमीटर का होता है। फूल डिब्बों में पैक करने के पश्चात् डिब्बों का सुराख खोलकर कोल्ड स्टोरेज में रख दिया जाता है, जिससे डिब्बे के अन्दर और बाहर का तापक्रम बराबर रहे। डिब्बे बाहर निकालते समय सुराख को बंद कर देना चाहिए।

पैदावारः कर्तित फूलों की पैदावार प्रजाति, पौध घनत्व प्रति वर्ग मी0, फूलों की गुणवत्ता पुष्प उत्पादन की अवधि, कटाई–छटाई, उर्वरक और समय–समय पर की जाने वाली अन्य सस्य क्रियायों पर निर्भर करती है।

गुलाब में लगने वाले प्रमुख रोग

चूर्णिल आसिता (पाउडरी मिल्डयू) : यह रोग 'स्फैरोथेका पन्नोसा किस्म रोजे' नामक फफूंद से होता है। गर्म एवं शुष्क मौसम तथा ठण्डी रातें इस रोग के लिए अनुकूल होती हैं। इसका प्रकोप पौधे के सभी बाहरी भागों पर होता है। नयी कोमल पत्तियां ऐंठ जाती हैं तथा उनकी उपरी सतह पर फफोले पड़ जाते हैं, जो सफेद चूर्ण से ढके होते हैं। पत्तियों, पुष्प वृंत तथा पुष्प कलिकाओं पर भूरे–सफेद चूर्णित ध्ब्बे दिखाई पड़ते हैं और यह फफूंद धीरे–धीरे पूरे पौधे पर सफेद चूर्ण के रूप में फैल जाती है। संक्रमित पत्तियां कुरूप हो जाती हैं। रोगग्रस्त कलियां नहीं खिल पाती हैं। पौध झुलसा हुआ दिखाई देता है।

प्रबंधन : गुलाब की रोग–रोधी किस्मों का उपयोग करें। रोग ग्रसित शाखाओं व टहनियों को काटकर जला देना चाहिए। खेत में गिरी हुई पत्तियों को एकत्रित कर नष्ट कर दें। खेत में नाइट्रोजनयुक्त उर्वरकों को कम मात्राा में दें तथा स्प्रिंकलर मिस्ट से सिंचाई करें। जैविक नियन्त्रण में जैसे एम्पिलोमाइसीज क्विसकबालिस तथा स्युडोजाइमा फ्रलोकुलोजा जैव कारक के व्यापारिक सूत्रण का छिड़काव करें। रोग से बचाव के लिए घुलनशील गंधक 2 ग्राम/लीटर या कैराथेन 1 मि.ली./लीटर या बैनलेट 1 मि.ली./लीटर या बाविस्टिन 2 ग्राम/लीटर घोल का छिड़काव प्रत्येक 10–15 दिन अंतराल पर 2 से 3 छिड़काव करें।

काला धब्बा (ब्लैक स्पॉट) : यह गुलाब का विश्वव्यापी रोग है। यह रोग 'डिप्लोकार्पन रोजैड़' नामक फफूंद से होता है। यह रोग बरसात या अधिक आर्द्रता एवं ठण्ड के मौसम में अध्कि फैलता है। पत्तियों के उपरी सतह पर 2–15 मि.मी. व्यास के वृताकार काले धब्बे पड़ जाते हैं। ये धब्बे गोल या बेडौल होकर एक साथ जुड़ते जाते हैं जिससे

पत्तियों के किनारे मुड़ जाते हैं। एक गहरे वृताकार या अनियमित आकार में छोटे–छोटे काले रंग के बिजाणुओं में कॉनिडिया सतह पर दिखाई देते हैं। इसके बाद पत्तियां पीली होकर गिर जाती हैं, तना तथा शाखायें सूख जाती हैं।

प्रबंधन : पौधों पर अधिक समय तक लगातार सिंचाई न करें। भूमि की सतह के पास की पत्तियों की कटाई–छंटाई नियमित रूप से करें। पौधों को अधिक सघनता पर न लगाएं और पौधों में अच्छा वायु संचार होने दें। रोग–रोधी किस्मों का उपयोग करें। रोग ग्रसित पत्तियों व टहनियों को एकत्रित करके जला दें तथा खेत की सफाई पर ध्यान दें। रोग से बचाव के लिए क्लोरोथैलोनिल 2 ग्राम/लीटर या फर्बाम 2 ग्राम/लीटर या बैनलेट 1 मि.ली./लीटर के घोल का छिड़काव करें।

उक्ठा (डाई बैक) : यह रोग *'डिप्लोडिया रोजेरम, कॉलेटोट्रिकम ग्लिओस्पोराइडिस'* नामक कवक से होता है। इस रोग के आक्रमण से पौधे ऊपर से नीचे की ओर सूखने लगते हैं। रोग मुख्य रूप से काटी–छांटी गयी शाखाओं की उपरी सतह से शुरू होता है। शाखाएं भूरे–काले रंग की हो जाती हैं। बाद में रोग शाखा से मुख्य तना तथा तने से जड़ में फैलता है। गंभीर प्रकोप होने पर पौधा मर जाता है। रोग नए पौधों की अपेक्षा पुराने पौधों पर जल्दी और अधिक होता है। फफूंद के बीजाणु साल भर पौधों की शाखाओं के कांटों में मौजूद रहते हैं। ये प्रभावित भागों पर गोल, गहरे रंग के धब्बे बनाते हैं। इनके आक्रमण से छाल पर गहरे भूरे रंग के बाहरी क्षतचिन्ह बन जाते हैं। प्रायः तने की छाल पर पाये जाने वाले क्षतचिन्ह उक्ठा या डाईबैक में बदल जाते हैं। इस रोग से फूलों के उत्पादन पर भारी गिरावट होती है।

प्रबंधन : रोग ग्रस्त शाखाऐं, सूखी टहनियों और मुरझाए हुए फूलों के डंठलों को काटकर जला दें। कटाई–छंटाई के बाद शाखाओं पर 4 भाग कॉपर कार्बोनेट, 4 भाग रेड लैड और 5 भाग अलसी के तेल का अच्छी तरह से मिश्रण बनाकर उसका लेप करें। कटाई–छंटाई के 10 दिन तक खाद–उर्वरक नहीं देना चाहिए।रोग–रोधी किस्मों का चयन करें। कार्बेन्डाजिम या क्लोरोथैलोनिल का 2 ग्राम/लीटर घोल से मृदा का उपचार करें।

गुलाब में लगने वाले प्रमुख कीट

लाल खपरा (रेड स्केल) : पौधें के तने पर लाल–भूरे रंग के कीट दिखाई देते हैं जो कि गतिहीन होते हैं। यह कीट तनों से रस चूस कर पौधे को कमजोर करके सूखा देते हैं। मादा कीट आकार में कुछ बड़ी व गोलाकार होती है, जबकि नर छोटे व लम्बे होते हैं। मादा एक ही स्थान पर रहती है। नर के बसंत में पंख निकलते हैं, और वह मादा की तलाश में इधर–उधर घुमता रहता है। यह कीट जुलाई–सितम्बर में अधिक क्रियाशील रहता है।

प्रबंधन : खेत में सफाई बनाए रखें तथा ग्रसित पौधे के भागों को नष्ट कर दें। इस कीट की रोकथाम के लिए डाइमेथोएट 2 ग्राम/लीटर पानी या इन्डोक्साकार्ब 14.5 ई. सी. 0.5–1.0 मि.ली./लीटर के घोल का छिड़काव करें।

चेंपा (एफिड) : यह कीट छोटे, गोल, हरे, गहरे हरे या काले रंग के होते हैं, जो पौधे के कोमल भाग, शीर्ष, कलियों तथा फूलों पर गुच्छों में चिपके रहते हैं और पौधे का रस चूसते रहते हैं। जिसके कारण पत्तियां सिकुड़ जाती हैं और पुष्प खराब हो जाते हैं। यह कीट ज्यादातर जनवरी–फरवरी में लगता है।

प्रबंधन : नीम तेल का 10 मि.ली. प्रति लीटर के घोल का छिड़काव करें। मृदा में नीम की खली का प्रयोग करें। कीट के नियंत्रण के लिए मैलाथियॉन 1 मि.ली./ लीटर या डाइमेथोएट 2 मि.ली./लीटर या मोनोक्रोटोफॉस 1.5 मि.ली./लीटर या लूफेनूरोन 5.4% ई.सी. 1 मि.ली/ली. घोल का छिड़काव प्रति 10–15 दिन के अंतराल पर करें।

लाल मकड़ी माइट (रैड स्पाइडर माइट) : दो चित्तियों वाला स्पाइडर माइट (टेट्रानिकस अरटिसी) बहुत ही छोटा या लगभग बिन्दु के समान लाल रंग का होता है तथा पत्तियों के नीचे वाले भाग पर रहता है। यह पत्तियों तथा पौधें के कोमल भागों से रस चूसती हैं, नई शाखाओं में मकड़ी जाल बनना, कलिकाओं तथा फूलों का नुकसान, जिससे वे रंगहीन हो जाते हैं, सिकुड़ तथा सूख जाते हैं। पुष्पों का आकार बिगड़ जाता है। यह अधिकतर हरित गृह का कीट है।

प्रबंधन : कीट ग्रसित पौधे के भागों को काट कर नष्ट कर दें। कीट की संख्या मध्यम स्तर पर हो उस समय परभक्षी माइट (*एम्बिसियस टेट्रानिकाइवोरस*) को 20 प्रति पौधे की दर से छोड़ना चाहिए। शाम के समय वर्टिसिलियम लीकेली सूत्रण का 5 ग्राम/लीटर की दर से छिड़काव करें। कीटों की रोकथाम के लिए डाइकोफोल 2.5 मि.ली./ लीटर या घुलनशील सल्फर 3 ग्राम/लीटर या वरटीमैक 2 मि.ली./ लीटर या औमाइट 2 मि.ली./लीटर पानी के घोल का छिड़काव करें।

थ्रिप्स : यह कीट नवम्बर–दिसम्बर तथा जुलाई–अगस्त में अत्यंत सक्रिय रहता है। निम्फ और वयस्क दोनों ही कोमल पत्तियों, बढ़ती कलिकाओं और फूलों से रस चूस लेते हैं। भूरी धारी, मुड़ी हुई पत्तियां, कलिकाओं के बाह्य दल तथा पंखुड़ियों पर झुलसन तथा जले किनारों वाले अनियमित आकार वाले फूल इसके मुख्य लक्षण हैं। यह पौधों की कार्यिकी सम्बंधित प्रक्रियाओं और पुष्पन को प्रभावित करता है।

प्रबंधन : पोंगामिया ग्लेबरा या जेट्रोफा कार्कस तेल का 10 मि.ली./लीटर या केलोट्रोपिस जिगान्टेड या पेडीलेंथस थिथिमेल्वायडिस की पत्तियों के अर्क को 100 ग्राम प्रति लीटर के हिसाब से पानी में मिलाकर छिड़काव करें। मोनोक्रोटोफॉस 2 मि.ली./लीटर या डाइमेथोएट 30 ई.सी. 2 मिली/लीटर घोल का 10–15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करें।

वैज्ञानिक विधि से मधुमक्खी पालन एवं प्रबंधन

सुभाष चंद्र एवं सचिन सुरोशे
कीट विज्ञान संभाग
भा.कृ.अनु.प.– भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012

मधुमक्खी पालन एक लाभकारी व्यवसाय है जिसे किसान या बेरोजगार नवयुवक अपनाकर एक वर्ष में लाखों रुपये की कमाई कर सकते हैं। मधुमक्खी पालन अधिक आमदनी का एक अच्छा विकल्प है। इस व्यवसाय को कम लागत में शुरू किया जा सकता है। जिन किसानों की काश्त योग्य भूमि कम होती है वह खेती बाड़ी के साथ–साथ मधुमक्खी पालन व्यवसाय को आसानी से कर सकते हैं। यह सभी क्षेत्रों एवं उन क्षेत्रों मैं जहाँ कृषि फसलों की खेती कठिन है वहाँ भी आसानी से अपनाया जा सकता है। किसानों की आय बढ़ाने के लिए और मधुमक्खी पालन को बढ़ावा देने के लिए देश के कई संस्थान इस व्यवसाय एवं प्रशिक्षण की ओर ध्यान दे रहे हैं। किसी मान्यता प्राप्त संस्थान से प्रशिक्षण लेकर इस व्यवसाय को शुरू किया जा सकता है। राष्ट्रीय मधुमक्खी परिषद् (नेशनल बी बोर्ड) से प्रमाणित संस्थाओं से मधुमक्खियों को खरीदा जा सकता है। मधुमक्खी आप उद्यान विभाग या फिर कृषि विज्ञान केंद्र से भी ले सकते हैं। मधुमक्खी पालन की शुरुआत दो से पाँच छत्तों के साथ की जा सकती है।

यूं तो देश में मुख्य रूप से चार– पांच प्रकार की मधुमक्खियां जैसे यूरोपियन या इटेलियन मधुमक्खी (*एपिस मेलीफेरा*), भारतीय मधुमक्खी (*एपिस सेरेना*), जंगली मधुमक्खी (*एपिस दोर्सेटा*) तथा स्टिगलेस मधुमक्खी या एम्बर बी (*मेलीपोना* एवं *ट्रीगोना*) पायी जाती हैं, किन्तु मधुमक्खी पालन के लिहाज से इटेलियन मधुमक्खी, भारतीय मधुमक्खी (*एपिस सेरेना*) एवं डंक रहित (स्टिंगलेस) मुख्य हैं। जंगली मधुमक्खी को अभी तक पाला नहीं जा सका है क्योंकि यह बहुत गुस्सैल होती है तथा इसका डंक काफी जहरीला होता है. इन में इटेलियन मधुमक्खी को काफी आसानी से पाल सकते हैं क्योंकि वह बहुत शांत स्वभाव की होती है। भारतीय मधुमक्खी इटेलियन मधुमक्खी से ज्यादा गुस्सैल स्वाभाव की होती है।

मधुमक्खी पालन से कई प्रकार के मधुमक्खी उत्पादों जैसे मधु, रॉयलजेली, विष, मोम, प्रोपोलिस इत्यादि के अलावा अप्रत्यक्ष लाभों के साथ–साथ रोजगार का भी सृजन होता है।

मधुमक्खियों की पालने योग्य प्रजातियाँ

एपिस मेलीफेरा (यूरोपियन या इटेलियन मधुमक्खी)

यह भारतीय मधुमक्खी से आकार में बड़ी होती है। इसके एक मौनगृह में दस छत्ते होते हैं। इनके छत्तों की लम्बाई 440 मिमी एवं चौड़ाई 228 मिमी होती है। इन मधुमक्खियों का छत्ता अंधेरे में होता है और ये समानान्तर छत्ते लगाती हैं। रानी अपेक्षाकृत बड़े आकार की होती है जिसका जीवनकाल दो से तीन वर्ष होता है एवं 1500–2000 अंडे प्रतिदिन देती है। इसकी मादा श्रमिक अच्छे भोजन की तलाश में लगभग 2.5 किलोमीटर तक के क्षेत्र में भ्रमण कर पौधों से पुष्परस एवं पराग एकत्र करती हैं। इस प्रजाति की उत्पादकता लगभग 25 किग्रा. शहद प्रति मौनगृह प्रतिवर्ष होती है। यह मधुमक्खी बहुत शान्त स्वभाव की होती है जिसके कारण इस प्रजाति का पालन काफी आसान होता है एवं शहद उत्पाद हेतु यह मधुमक्खी पूरे विश्व में पाली जाती है।

एपिस सेरेना इण्डिका (भारतीय मधुमक्खी)

यह मधुमक्खी भारतवर्ष के सभी भागों में पाई जाती है यह मध्यम आकार की होती है तथा यह बंद स्थानों एवं अंधेरे वाली जगहों जैसे पेड़ों के खोखलों एवं अन्य समान संरचना वाले स्थानों पर एक साथ 7 से 8 छत्ते समानान्तर दूरी पर लगाती हैं। इनके रानी का जीवनकाल भी 2 से 3 वर्ष होता है जो प्रतिदिन 700 से 1600 अण्डे देती है। श्रमिक मधुमक्खी 800 मीटर से लेकर 1 किलोमीटर परिधि तक वनस्पतियों पर भ्रमण कर पुष्परस एवं पराग एकत्रित

करती हैं। इनकी मधु उत्पादन की क्षमता लगभग 10 से 15 किग्रा. प्रतिवर्ष प्रति मौनगृह होती है।

स्टिंगलेस मधुमक्खी (मेलीपोना व ट्रीगोना)

यह मधुमक्खी डंकहीन होती है। इसके छत्ते छोटे गोलाकार एवं काले रंग के होते हैं। इससे प्राप्त शहद के औषधीय गुणवत्ता ज्यादा होती है। ये फसलों में पर परागण के लिए सर्वाधिक उपयोगी होती है। इनका पालन पेड़ या बांस की खोखली संरचनाओं में किया जा सकता है। स्टिंगलेस मधुमक्खी (ट्रीगोना प्रजाति) से प्रतिवर्ष 600 ग्राम प्रति मौनगृह शहद का उत्पादन होता है।

मधुमक्खी का जीवनचक्र

मधुमक्खी एक सामाजिक कीट है जो एक परिवार की तरह काम करती है। मधुमक्खी के छत्ते (कॉलोनी) में रानी, नर व् मादा श्रमिक होते हैं। पूरे परिवार में एक ही रानी मधुमक्खी होती है। मधुमक्खी में श्रम विभाजन लिंग एवं आयु के अनुसार होता है। एक मधुमक्खी के छते में 40000–50000 सदस्य होते है एवं एक मौनवंश में केवल एक रानी, 20–200 नर व् शेष श्रमिक मधुमक्खियां होती हैं इनका जीवनचक्र तीन अवस्थाओ में पूरा होता है।

रानी मक्खीः रानी मक्खी आकार में सबसे बड़ी, सक्रिय एवं सुनहरे रंग वाली पूर्णतया विकसित मादा होती है। इसमें मोमग्रंथि का विकास नहीं होता है। इसका जीवन काल 2–3 वर्ष का होता है।

श्रमिक मक्खीः यह अपूर्ण विकसित एवं बंध्य मादा होती है एक छत्ते में इनकी संख्या 20000–30000 तक होती है एवं इनका जीवनकाल 35–42 दिन का होता है। परिवार में सबसे बड़ा काम श्रमिक मक्खियों का होता है। इनके कार्यो का बटवारा उम्र के आधार पर होता है, जैसे 1–14 दिन तक सक्रिय रूप से छत्ते की सफाई करना, 14–20 दिन तक छत्ते के प्रवेश द्वार पर सुरक्षाकर्मी का कार्य करना एवं 20–35 दिन तक पुष्परस/मकरंद एवं परागकण का संग्रहण करना होता है।

नर मक्खी (ड्रोन): सक्रिय नर मक्खी अनिषेचित अंडे से उत्पन होता है। इनका जीवन चक्र लगभग 60 दिन का होता है एवं इसका कार्य केवल निषेचन करना होता है।

मधुमक्खी पालन का तरीका एवं का जीवन चक्र प्रबंधन

मधुमक्खी पालन शुरू करने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त समय फरवरी–मार्च या अक्टूबर–नवम्बर का होता है। यह समय तापक्रम की दृष्टि से रानी मधुमक्खी द्वारा सर्वाधिक अंडा उत्सृजन के लिए उपयुक्त होता है। पारम्परिक मधुमक्खी पालन में प्राकृतिक रूप से मधुमक्खी द्वारा छत्ता बनाया जाता है। इस विधि से छत्तों को बिना नष्ट किये या बिना हटाए मधु निकालते हैं। आधुनिक मधुमक्खी पालन व्यावसायिक रूप से कहीं भी किया जा सकता है, जिसमें कृत्रिम तरीके के सांचो पर मधुमक्खी द्वारा छत्ता बनाया जाता है और उसमे मधु तैयार होता है। छत्तों को आसानी से हटाया जा सकता है और बार–बार प्रयोग में लाया जा सकता है।

मधुमक्खी पालकों को मधुमक्खी पालन से अधिक लाभ लेने हेतु मौनवंश की देखभाल एवं मौसम के अनुसार वैज्ञानिक प्रबंधन करना अति आवश्यक होता है। इसके लिये निम्न बिंदुओं का अनुपालन करना चाहिए।

मधुमक्खी अपने भोजन के लिए पूर्णतया पुष्पीय पौधों पर आश्रित होती है। मधुमक्खी पालकों को तीन किलोमीटर परिधि के क्षेत्र में मौसमी फूल वाली वस्पतियों जैसे सब्जियों, फलदार वृक्ष, शोभाकारी पौधे एवं वानिकी वृक्षों के रोपण एवं आच्छादन की जानकारी होना अति आवश्यक है। मधुवाटिका के लिये खुले धूप वाले स्थानों का चयन करना चाहिए। जहां पर स्वच्छ जल एवं प्रचुरता में फूल वाली फसलें उपलब्ध हो एवं बिजली के उपकरणों, सडक, यातायात से व्यवधान उत्पन्न न हो। मधुमक्खी पालन हेतु मधुमक्खियों की उपयुक्त प्रजातियो (*ए. मेलीफेरा* एवं *ए. सेरेना*) का चयन करें। अच्छी गुणवत्ता वाली एवं माइट व रोग रहित कॉलोनी का चयन करना चाहिए। किसी प्रमाणित संस्था से ही मधुमक्खी खरीदना चाहिए। मधुवाटिका में कॉलोनी को सुरक्षित जगह में रखना चाहिए।

मौनवंश का नियमित अंतराल पर निरीक्षण करते रहना चाहिए। इसके अंतर्गत मौनवंश के बक्सों में रानी मक्खी एवं अंडोत्सर्जन, छत्तों में मधु पराग का संचय, कीटों एवं रोगों के प्रकोप की जानकारी प्राप्त करना होता है। बसंत काल में एक सप्ताह पर जबकि वर्षा काल में दो सप्ताह पर मौनवंश का निरीक्षण अवश्य करना चाहिए।

पानी की व्यवस्था करना तथा अभावकाल में भोजन का प्रबंध करना भी जरूरी हो जाता है। मधुमक्खियों का प्रजनन के समय विशेष देखभाल एवं मौसमी प्रबंध करना चाहिए। इसी तरह पीड़कनाशी या बीमारियों से मधुमक्खियों की कॉलोनी का बचाव करना चाहिए।

मधुमक्खी पालन हेतु आवश्यक उपकरण

मधुमक्खी पालन शुरू करने हेतु कम लागत एवं सस्ते उपकरणों की आवश्यकता होती है। मौन गृह (मधु बक्सा), मधुमक्खी पालन का अति महत्वपूर्ण उपकरण है। इसके अतिरिक्त मधुमक्खी पालन के आवश्यक उपकरण इस प्रकार हैं– केन्द्रीय छत्ता, स्टैंड फ्रेम, फीडर, रानी मक्खी एक्सक्लूडर, मधु निष्कर्षक, धुरमक, टूल किट, स्टील कंटेनर, कुकिंग यंत्र, चाकू एवं ट्रे, रानी मधुमक्खी पालक किट, काम्ब फाउंडेसन शीट आदि।

कृत्रिम भोजन की व्यवस्था

भोजन अभाव काल के दौरान, मधुमक्खी की कालोनियों ऐसी जगह स्थानान्तरित करना चाहिए जहाँ वानस्पतिक पुष्पीय स्रोत उपलब्ध हों। भोजन अभाव काल के समय मधुमक्खी हेतु भोजन स्रोत के रूप में कृत्रिम भोजन देना अति आवश्यक होता है। कृत्रिम भोजन बनाने के लिए उबले हुए पानी का प्रयोग करना चाहिए एवं एंटी वायोटिक्स का प्रयोग नहीं करना चाहिए। कृत्रिम भोजन के रूप में गर्मियों में चीनी के घोल की सांद्रता 25 प्रतिशत जबकि वर्षा एवं शरद काल में यह सांद्रता 50 प्रतिशत रखनी चाहिए। सामान्यतया 800–1000 ग्राम सर्करा प्रति कॉलोनी प्रति 10 दिन के लिए पर्याप्त होती है। कृत्रिम भोजन प्रवंधन हेतु शक्कर के 50 प्रतिशत सांद्रता वाले घोल या सोयाबीन आटा, यीस्ट, दूध का पाऊडर, शर्करा, शहद (3:1:1:22:50) के मिश्रण का प्रयोग करें। मौनवंशों को भोजन अभाव के समय एक स्थान से दूसरे स्थान में अधिक शहद एवं वृद्धि के लिए स्थानांतरण (माइग्रेसन) करना चाहिए। प्रवजन से पहले शहद का निष्कर्षण अवश्य कर लें एवं मधुमक्खी का प्रवजन सदैव शाम के समय करें।

मौनवंश का विभाजन

अच्छे मौसम में मधुमक्खियों की संख्या बढ़ती है अतः मधुमक्खी परिवारों का विभाजन करना चाहिए। ऐसा नहीं करने पर मधुमक्खियां भाग सकती हैं। मौनवंश से उसी प्रकार का दूसरा मौनवंश बनाने काम इस प्रकार करें जिससे भोजन संचय एवं शिशु मौन दो बराबर–बराबर गृहों में विभाजित हो जाएँ। विभाजन के लिए मूल परिवार के पास खाली बक्सा रखें और मूल मधुमक्खी परिवार से 50% ब्रूड, शहद एवं पराग वाले फ्रेम तथा रानी वाला फ्रेम भी नये बक्से में रखे। दोनों बक्सों को रोज एक एक फीट एक दूसरे से दूर करते जाएं इस प्रकार नया बक्सा तैयार हो जायेगा।

मौसमी प्रबंधन

मधुमक्खी के छत्तों का मौसम के अनुसार प्रबंधन करें जैसे – ग्रीष्मकाल में शेड का प्रयोग, वर्षा ऋतु में रोगों एवं कीटों से बचाव, शरद ऋतु में ठण्ड से बचाव एवं वसंत ऋतु में मधुमक्खियों के स्वार्मिंग की प्रकिया को रोकने की व्यवस्था करना आदि। विभिन्न ऋतुओं में अपनाये जाने वाले आवश्यक प्रबंध इस प्रकार हैं।

ग्रीष्मकालीन प्रबंधन

मधुवाटिका के आस पास स्वच्छ जल की उपलब्धता सुनिश्चित करनी चाहिए तथा कॉलोनियों को छाया में रखना चाहिए। तेज धूप से बचाव के लिए कॉलोनियों को पटसन के गीली बोरियों से ढक कर रखना चाहिए।

वर्षाकालीन प्रबंधन

मधुमक्खियों की कालोनियों को भोजन अभावकाल के समय आवश्यकतानुसार कृत्रिम भोजन उपलब्ध कराएं एवं पीड़क कीटों व रोगों एवं भारी वर्षा से बचाव करें। इसके लिए 800 ग्राम चीनी का प्रयोग कॉलोनी/10 दिन के अंतराल में करना चाहिए। पराग की कमी होने पर कृत्रिम भोजन में चीनी के साथ सूखा दूध का पाउडर एवं सोयाबीन का आटा मिलाकर देना चाहिए।

शीतकालीन प्रबंधन

शीतकाल में मौनगृह को धूप में रखें एवं उन्हें चारों तरफ से पुआल या पटसन (टाट) की बोरियों से ढक दें। मौनगृहों में छिद्र नहीं होने चाहिए यदि हों तो उन्हें बंद कर देना चाहिए। इनके निचले पट्टों (इनर कवर) को बोरियों से अवश्य ढक देना चाहिए।

अस्वस्थ मौनवंशों का प्रबंधन

अस्वस्थ मौनवंशों के प्रबंधन में संगरोध का पालन करें अर्थात स्वस्थ मौनवंशों को अस्वस्थ मौनवंशों से दूर रखें। अस्वस्थ मौनवंश से शहद नहीं निकालना चाहिए। रानी मधुमक्खियों को दो वर्ष के अंतराल पर बदले।

मधुमक्खियों की फसल परागण में उपयोगिता

मधुमक्खी पालन से कई प्रकार के मधुमक्खी उत्पादों के साथ साथ फसलों के परागण में भी महत्वपूर्ण सहायता मिलती है। ये परागण का काम करती हैं यानि पर–परागित पुष्पों में पराग को एक पुष्प से दूसरे पुष्प तक ले जाती हैं जिससे उनकी निषेचन क्रिया पूरी होती है। इस तरह मधुमक्खियां फसलों में परागण क्रिया करके उनकी उपज, बीजोत्पादन, फसलोत्पादन एवं गुणवत्ता बढ़ाने में भी महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। एक सामान्य एपिस मेलिफेरा मधुमक्खी कॉलोनी एक वर्ष में 4 लाख उड़ानें भर सकती हैं और प्रत्येक उड़ान में कम से कम 100 फूलों का दौरा कर सकती है।

यूरोप में मधुमक्खी परागण का मूल्य इस क्षेत्र में शहद और मोम की उत्पादन मूल्य का 30–50 गुना माना जाता है। अफ्रीका में मधुमक्खी परागण का अनुमान कभी कभी शहद की उत्पादन मूल्य से 100 गुना अधिक होता है जो कि वहाँ के फसल के प्रकार पर निर्भर करता है। दुनिया भर में परागण का आर्थिक मूल्य 90 अरब अमेरिकन डॉलर से भी अधिक हो सकता है और भारतीय फसलों के परागण का मौद्रिक मूल्य नीचे तालिका में दिया गया है:

क्रमांक	फसलें	आर्थिक मूल्य (रुपये)	आर्थिक मूल्य (%)
1	रेपसीड और सरसों	19355 करोड़	–
2	तिलहन	43993 करोड़	34
3.	फल	17095 करोड़	14
4.	सब्जियां	19498 करोड़	11
5.	फाइबर (मुख्य रूप से कपास)	17290 करोड़	23
6.	मसाला और मसाले	10109 करोड़	25

मधुमक्खियों का समन्वित रोग एवं कीट प्रबंधन

मधुमक्खी में कई प्रकार के पीड़कों (कीटों एवं रोगों) का प्रकोप होता है। मधुमक्खी के महत्वपूर्ण रोगों के अंर्तगत फाउलब्रूड, चाकब्रूड, सैकब्रूड, नोसीमा आदि आते हैं। माइट (वरोरा स्पी.) व कीटों में वास्प (*वेस्पा औरेंटैलिस*), बीटल (*एथीना टुमिडा*), चींटी (*ओइकोफाइला* एवं *मोनोमोरियम*), वैक्समोथ (*गैलेरिया मेलोनेला*) आदि मुख्य हैं। इनसे बचाव के लिए निम्नलिखित तरीके अपनाएं।

i. मधुमक्खी के छत्ते को 15 से 20 मिनट तक धूप में रखें।

ii. मधुमक्खी के डिब्बे की साफ –सफाई करें। किनारों की सफाई के लिए बुन्सन बर्नर का प्रयोग करें। मधुमक्खी के खाली छत्तों को गंधक (सल्फर) के चूर्ण से 230 ग्राम प्रति घन मीटर से उपचारित करें या खाली छत्तों को निर्जमीकृत करने के लिए 80 प्रतिशत एसिटिक अम्ल के 150 मिली./छत्ता प्रयोग में लाएं।

iii. रोगों के प्रभावी प्रबंधन हेतु उपकरणों को 49 डिग्री से. ग्रेड पर 24 घंटे तक रख कर निर्जमीकृत करें अन्यथा सभी संक्रमित उपकरणों को 7 प्रतिशत फार्मेलिन एवं साबुन के घोल में 24 घण्टे तक रखने के बाद साफ पानी से धोकर सुखाने के बाद प्रयोग में लाएं।

iv. मधुमक्खी के डिब्बे को स्टैंड पर जमीन से 40 से 60 से.मी. की ऊंचाई पर रखें। स्टैंड के पाओं को जल से भरी हुई कटोरियों के ऊपर रखना चाहिए।

v. दो एपियरी के मध्य कम से कम 3 किलोमीटर की दूरी रखें। कालोनियों की पंक्तियों के बीच की दूरी 10 फीट एवं कालोनियों के बीच की दूरी कम से कम 3 फीट रखें। संक्रमित कालोनी से छत्ते न बदलें न ही संक्रमित कालोनी वाले उपकरणों का प्रयोग नई कालोनी में करें।

vi. परभक्षी चिड़ियों से मधुमक्खी के छत्तों को बचाने के लिए ड्रम ध्वनि का प्रयोग करें।

vii. जहाँ तक सम्भव हो सके कालोनियों में जालीदार तलपटटों का प्रयोग करें इससे वरोआ माइट के प्रकोप में 25 प्रतिशत तक की कमी आती है दिसम्बर से अप्रैल तक कालोनियों में सुपर लगाना चाहिए।

viii. माइट प्रतिरोधी कालोनियों का प्रयोग करें। वरोआ माइट के रोकथाम का उपाय अभाव काल एवं बसन्त काल के समय अवश्य अपनाना चाहिए।

माइट के नियंत्रण के लिए सल्फर (99.5 प्रतिशत) का प्रयोग 0.5 ग्राम/फ्रेम केवल फ्रेम के ऊपरी सतह पर सावधानी से करें जिससे यह मधुमक्खियों के सम्पर्क में न आये अन्यथा यह मधुमक्खियों के लिए विषाक्तता का कारण बन जायेगा या मिथाइल सैलिसायलेट (99 प्रतिशत) का 3 मिली./मौनग्रह रुई के फुहे के माध्यम से दे। इसके अलावा आक्जैलिक अम्ल के 32 ग्राम को शक्कर के शर्बत (1:1) में घोलें एवं इसके 20–30 मिली. का प्रयोग मधुमक्खी के प्रवेश द्वार को गीला करने के लिये करें।

ix. सैकब्रूड के नियत्रण के लिये प्रभावित छत्तों पर धूमन (धुएँ) के रूप में 2 प्रतिशत थाइमोल घोल के 3 मिली. प्रति मौनग्रह में प्रयोग करना चाहिये।

मधुमक्खियों को पीड़कनाशियों से बचाने के उपाय

i. फसलों पर फूल आने के समय कीटनाशियों का छिड़काव नहीं करना चाहिए।

ii. यदि अत्यावश्यक हो तो कीटनाशकों का छिड़काव शाम के समय करें क्योंकि इस समय मधुमक्खियां प्रायः पुष्पों पर भ्रमण नहीं करती हैं। ऐसी अवस्था में जैविक कीटनाशियों के प्रयोग से मधुमक्खियों को सुरक्षित रखा जा सकता है

iii. फसलों में पीड़कनाशियों के छिड़काव के समय मधुमक्खियों के छत्तों के प्रवेश द्वारों को बंद कर देना चाहिए। यदि सम्भव हो तो छत्तों को अस्थाई रूप से स्थानान्तरित करें। यदि स्थानान्तरण सम्भव न हो तो शर्करा का घोल भोजन के रूप में उपलब्ध करवाना चाहिए।

iv. फसलों में पीड़क कीटों के प्रबंधन हेतु कम विषाक्त एवं अनुशंसित रसायनों/पीड़कनाशियों का सुरक्षित प्रयोग करें जो मधुमक्खियों के लिए कम हानिकारक हों।

v. कीटनाशकों के धूलि संरूपणों (फार्मुलेशन) की अपेक्षा दानेदार संरूपणों का प्रयोग मधुमक्खियों के लिए सुरक्षित होता है।

मधुमक्खियों एवं अन्य परागणकर्ता कीटों पर कीटनाशकों का विषैला प्रभाव पड़ता है। फसल संरक्षण के अंतर्गत एकीकृत कीट/रोग प्रबंधन में चयनित कीटनाशक मधुमक्खियों एवं परागण करने वाले कीटों के लिए सुरक्षित होने चाहिए। इस सन्दर्भ में ऐसे कीटनाशकों का चुनाव करें जो मधुमक्खियों एवं अन्य परागण करने वाले कीटों को कम हानि पहुंचाएं।

मधुमक्खी पालन में वैज्ञानिक पद्धति अपनाने से कॉलोनियां स्वस्थ रहती हैं जिससे शहद, प्रोपोलिस, मोम व अन्य उत्पादों के अधिक उत्पादन से ज्यादा आय प्राप्त की जा सकती है। इसके साथ साथ फसलों की उपज व गुणवत्ता बढ़ाने में भी मदद मिलेगी।

किसानों के लिए रोजगार का साधन : मशरूम उत्पादन

दिवाकर बहुखण्डी
पादप रोगविज्ञान संभाग,
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली – 110012

मशरूम का सब्जी व औषधि दोनों प्रकार से उपयोग मानव अतीत से ही करता आ रहा है। खुम्ब का इतिहास मानव सभ्यता व विकास के साथ जुड़ा है। भारत की अधिकांश जनसंख्या गाँवो में रहती है व ग्रामीण इलाकों का शीघ्र विकास मानव और प्राकृतिक दोनों ही स्त्रोतों के वैज्ञानिक उपयोग से संभव हैं। हमारे देश में किसान उसी खेती और तकनीक का इस्तेमाल करना ज्यादा अपने हक में समझते है, जिसमें कम लागत तथा अधिक आर्थिक लाभ हो। इस सन्दर्भ में मशरूम का उत्पादन गरीब व मध्यवर्गीय किसानों के लिए अंशकालीन या पूर्णकालीन लाभकारी रोजगार हो सकता है। मशरूम उगाने के लिए कृषि उत्पादन के व्यर्थ पदार्थ ही प्रयुक्त होते है। अवकाश प्राप्त व्यक्तियों और गृहिणियों के लिए यह एक लाभकारी शौक है, जिसे वे घर के अन्य कार्यों के साथ–साथ कर सकते है, क्योंकि मशरूम की खेती घर के भीतर की जाती है।

आहार पौष्टिकताः मशरूम, कवक या फंफूद का परिपक्व फल है, जिन्हें विश्व के सभी भागों में लोग सब्जी व अनेक व्यंजन बनाने में प्रयोग करते है। विश्व में बढ़ रही जनसंख्या की प्रोटीन आपूर्ति के लिए मशरूम एक अच्छा स्रोत है। भारत में खुम्भ (मशरूम) व उससे बने स्वादिष्ट व्यंजक लोकप्रिय हो रहे है। इनमें चिकनाई (फैट) तथा स्टार्च कम मात्रा में होती है, जिसके कारण यह शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के साथ–साथ डायबिटीज, उच्च रक्त चाप, अल्सर, हृदय के रोगों, पेट सम्बन्धी विकार तथा पीलिया के रोगियों के लिए अत्यन्त लाभकारी व उत्तम आहार हैं। मशरूम प्रोटीन, खनिज लवण एवम विटामिनों से भरपूर होते हैं। सामान्यता मशरूम में उसके शुष्क भार के अनुसार लगभग 55% कार्बोहाइड्रेट, 32% प्रोटीन, 2% वसा व शेष खनिज लवण, रेशा व विटामिन पाए जाते है। विटामिन में मुख्यताः थाएमिन (विटामिन बी–1), राइवोफ्लेविन (विटामिन बी–2), नायसिन, पेन्टाथेनिक अम्ल (विटामिन बी–कम्प्लैक्स), बायोटिन, फोलिकअम्ल, विटामिन–सी, डी, ए, व के पाये जाते है। खनिज लवणों में फास्फोरस, पोटेसियम, कापर, लौह तथा सूक्ष्म तत्वों में सोडियम, कैलसियम व मैग्नीसियम आदि मुख्य रूप से पाए जाते है। यह शाकाहारियों के लिए उत्तम पौष्टिक आहार है, क्योकिं इनमें मानव जाति के लिए उपयोगी 9 प्रकार के एमीनो एसिड (अमीन युक्त अम्ल) पाए जाते हैं। मशरूम आसानी से पचाए जाते हैं, इसकी आहार पौष्टिकता की तुलना मांस की आहार पौष्टिकता से की जा सकती है। इनमें उत्तम प्रोटीन व स्वादिष्ट होने की वजह से प्रायः इन्हें शाकीय मांस भी कहते है।

उत्पादनः संसार भर में लगभग 4 मिलियन टन मशरूम का उत्पादन होता है। हमारे देश में लगभग 1 लाख पचास हजार टन से भी ज्यादा खुम्ब प्राति वर्ष उगाई जा रही है एवम् इनके उत्पादन में निरन्तर वृद्धि हो रही है। विश्वभर में खाई जाने वाली मशरूम की लगभग दो हजार प्रजातियाँ पायी जाती हैं, जिसमें से भारत में लगभग तीन सौ प्रजातियाँ रिपोर्ट की गई है और उनमें से लगभग 40 प्रकार की मशरूम को उगाने की तकनीक का पता लगाया गया है। व्यवसायिक तौर पर हमारे यहाँ लगभग 10 प्रकार की खुम्ब का उत्पादन किया जाता है, इनमें बटन खुम्ब (अगेरिकस बाइस्पोरस) सबसे ज्यादा लोकप्रिय है। इसके बाद शिटाके मशरूम (लैन्टीनूला इडोड्स), आयस्टमर मशरूम या धींगरी (प्ल्यूरोटस जातियां), पराल खुम्ब/पैडीस्ट्रा (वोल्वेरिएला जातियां) तथा दूधिया मशरूम (कैलोसाइवी इन्डिका) हैं। प्रत्येक मशरूम की वृद्वि के लिए तामान की एक निश्चित सीमा होती है। इनमें से बटन मशरूम व सिटाके मशरूम ठंडी जलवायु में उगते है व इनको उगाने के लिए तापमान 20° से॰ से कम होना

चाहिए। पराल खुम्ब, दूधिया व आयस्टर मशरूम की विभिन्न प्रजातियों को उगाने के लिए तापमान 20–35° से॰ होता है। पर्वतीय इलाकों को छोड़कर भारत का अधिकांश भौगोलिक भाग गर्म व गर्म तर जलवायु वाला है जिसे उपोष्ण या समसीतोश्ण जलवायु वाले भौगोलिक भाग कहते है। इन मैदानी भागों में शीत काल थोड़े से समय के लिए होता है, और साल के 7–8 महीने यहां का तापमान 20–35° से॰ से भी ऊपर रहता है। वहां बटन मशरूम की खेती केवल शीलकालीन महीनों (4–5) में की जाती है। ऐसी जलवायु में पराल खुम्ब (वोल्वेरिएला जातियां), दूधिया मशरूम (कैलोसाइवी इन्डिका) व प्ल्यूरोटस (आयस्टर जातियां) मशरूम आसानी से उगाया जा सकता है।

उत्तर भारत में विभिन्न मशरूम उगाने का समय:विभिन्न प्रकार के मशरूम को उगाने का मौसम अलग–अलग होता है। मशरूम के कवक जाल फैलने एवं फलनकाय बनने के लिए अलग–अलग तापमान की जरूरत पड़ती है। कुछ मशरूम के कवक जाल फैलने एवं फलनकाय बनने के लिए जरूरी तापमान एवं विभिन्न मशरूम उगाने का समय निम्नलिखित सारणी में दिए गए है–

मशरूम प्रजाति	उपयुक्त तामपान (सेलसियस)		उत्तर भारत में विभिन्न मशरूम उगाने का समय
	कवक जाल	फलन काय	
श्वेत बटन मशरूम (*अगैरिकस बाइस्पोरस*)	20–25	14–18	अक्टूबर से मध्य मार्च
श्वेत बटन मशरूम (*अगैरिकस बाइटोरक्विस*)	25–32	18–26	सितम्बर से मार्च
शिटाके मशरूम (*लैन्टीनूला इडोड्स*)	20–27	10–20	अक्टूबर से फरवरी
आयस्टमर मशरूम या धींगरी (*प्ल्यूरोटस प्रजातियां*)	22–32	15–30	सितम्बर से अप्रैल
धान पराल या पराल मशरूम (*वोल्वेरिएला प्रजातियां*)	25–35	25–35	मई से सितम्बर
दूधिया मशरूम (*कैलोसाइवी इन्डिका*)	25–35	26–32	अप्रैल से अक्टूबर

प्रस्तुत लेख में आयस्टमर मशरूम (प्ल्यूरोटस प्रजातियां), दूधिया मशरूम (कैलोसाइवी इन्डिका) एवं पराल मशरूम (वोल्वेरिएला प्रजातियां) की उत्पादन तकनीक का संक्षेप में विवरण किया गया है ताकि किसान लोग इन्हें उगाकर अतिरिक्त आय आर्जित कर सकते है क्योंकि इन मशरूम को उगाने की विधि श्वेत बटन मशरूम (अगैरिकस बाइस्पोरस)को उगाने की विधि से तुलनात्मक सरल है।

ऑयस्टर (प्ल्यूरोटस) मशरूम का उत्पादन

प्ल्यूरोटस मशरूम (ढींगरी) को ऑयस्टर मशरूम के नाम से भी जाना जाता है क्योकिं इसका आकार सीप (ऑयस्टर) की तरह होता है। दुनिया में ऑयस्टर मशरूम की 38 से ज्यादा प्रजातियाँ पहचानी जा चुकी हो, जिनमें से करीब 25 प्रजातियाँ भारत में पायी जाती है। इनका रंग कई तरह का होता है जैसे सफेद, क्रीमी, हल्का पीला, भूरा, हल्का सलेटी से गहरा सलेटी, कत्थईपन लिए हुए या गुलाबी। ऑयस्टर मशरूम की विभिन्न प्रजातियों को आसानी से कृषि अवशेषों, आहार उद्योग (फूड इंडस्ट्री) के अवशेषों, सूखी घास, भूसे, पत्तियों, डंठलों, आदि पर आसानी से उगाया जा सकता है, जिनमें लिग्निन, सल्यूलोज तथा हैमीसैल्यूलोज होता है। इसका व्यावसायिक उत्पादन, उपलब्धता के आधार पर, केले के कटे हुए तनों, मक्का तथा बाजरा की गुल्ली (कौब), मूँगफली के छिलकों, विभिन्न फसलों तथा दालों के छिलकों, भूसों, नारियल के रेशों तथा कपास के अवशेषों पर आसानी से किन्तु भिन्न तरीकों से करते हैं। भारतवर्ष के विभिन्न इलाकों में इसकी 13–14 प्रजातियों का उत्पादन होता है, जिनमें प्रमुख *प्ल्यूरोटस सजोरकाजू, प्ल्यू. कौरानूकोपिएई, प्ल्यू. एरिंजाई, प्ल्यू. फ्लोरीडा, प्ल्यू. फ्लैबेलेटस, प्ल्यू. ओपनशियाई, प्ल्यू. सिटरीनोपीलिएटस, प्ल्यू. सिस्टीडिओसस, प्ल्यू. सैपीडस, प्ल्यू. इओस, प्ल्यू. डीजेमार, प्ल्यू. एबेलोनस* तथा *प्ल्यू. औस्ट्रिएटस* है।

अधःस्तर या सब्सट्रेट तैयार करना: ढींगरी (ऑयस्टर) मशरूम की खेती करने के लिए, प्रमुख रूप से धान अथवा गेहूँ के भूसे का इस्तेमाल किया जाता है। किसानों को अधःस्तर या सब्सट्रेट का चुनाव आसानी से तथा सस्ते

दामों पर उपलब्धता के आधार पर करना चाहिए। भार के अनुपात में 75% कपास के अवषिष्ट, 24% गेहूँ का कटा हुआ भूसा (4–6 सेमी लम्बा) तथा 1% बुझे हुए चूने का पाउडर/चाक पाउडर मिलाकर तैयार किया गया सब्सट्रेट भी ढ़ींगरी की अच्छी उपज देता है। वैसे अनाजों का भूसा, ऑयस्टर मशरूम की खेती के लिए बहुत अच्छा माध्यम है। इस माध्यम को उपयोग में लाने के लिए उसको गर्म जल, भाप या रासायनिक उपचार द्वारा कीटाणु मुक्त कर लिया जाता है। मशरूम उत्पादन हेतु नए तथा साफ भूसे का ही प्रयोग करना चाहिए।

1: गेहूँ का भूसा अथवा पुआल (2–5 सेंमी लम्बे टुकड़ा) को 12–18 घंटे के लिए स्वच्छ जल से भरे ड्रम में भिगो दें। रासायनिक उपचार करने के लिए ड्रम में प्रति 100 लीटर पानी में 7–10 ग्रा बेविस्टिन तथा 125–150 मिली फॉर्मेलीन मिलाएं तथा भूसा भिगोने के बाद उसको पॉलीथीन से ढ़क दें।

2: गर्म पानी से उपचारित करने के लिए भीगे हुए भूसे को 2 घंटे गर्म पानी में (80° सें. तापमान) भिगोएं।

3: भाप (वाष्प) द्वारा भूसा उपचारित करने हेतु, भीगे हुए भूसे को किसी कन्टेनर/ड्रम में भर कर बन्द कर दें तथा उसमें नोजल द्वारा भाप प्रवाहित करें (72° सें. पर 2 घन्टे)।

भूसे को रसायन, गर्म पानी अथवा वाष्प द्वारा उपचारित करने के बाद पानी से निकालकर साफ फर्श पर 1 घंटे के लिए फैला दें जिससे उसका अतिरिक्त पानी निकल जाएं व ठंडा हो जाएं। तैयार माध्यम में पानी की मात्रा 65–70% होनी चाहिए, फिर इसमें स्पॉन मिलायें।

मशरूम प्रजाति तथा स्पॉन का चुनाव : ऑयस्टर मशरूम की प्रजाति का चुनाव करते समय इस बात का खास ध्यान रखें कि साल के किस महीने में आप इस मशरूम उत्पादन कर रहे हो, इसलिए वातवारण (तापमान) के हिसाब से ही ऑयस्टर मशरूम की प्रजाति का चुनाव करें। भारतवर्ष में सबसे ज्यादा प्रचलित *प्ल्यूरोटस सजोरकाजू, प्ल्यू. आस्ट्रिएटस, प्ल्यू. फ्लोरिडा* (सफेद), *प्ल्यू. ओपनसी, प्ल्यू. कौरानूकोपिएई* (पीली ऑयस्टर मशरूम) तथा *प्ल्यूरोटस इओस* (गुलाबी रंग) है।

स्पानिंग या बीजाई: मशरूम के बीज को स्पॉन तथा सब्सट्रेट (अधःस्तर) में मशरूम का बीज डालने की विधि को स्पानिंग कहते हो। ऑयस्टर मशरूम के लिए स्पानिंग करने की दो विधियाँ ज्यादा प्रचलित है। पहली विधि में स्पॉन को पूरे सब्सट्रेट में एक साथ अच्छी तरह से मिला लिया जाता है जबकि दूसरी विधि में सब्सट्रेट की 8–10 सेमी मोटी तह बिछा कर उसके ऊपर स्पॉन बिखेर दिया जाता है। आमतौर पर सूखे सब्सट्रेट के भार का 2–3% या गीले सब्सट्रेट के भार का 1.5–2% की दर से, स्पॉन की मात्रा मिलाया जाता है। ऑयस्टर मशरूम की ज्यादा उपज लेने के लिए गीले उपचारित भूसे में 3–6% (भारःभार) की दर से, धान अथवा गेहूँ का चोकर, बेसन पाउडर (चने की दाल का आटा) आदि मिला दिया जाता है जिससे उपज में 20–30% की दर से बढ़ोतरी हो जाती है तथा फलनकाय निकलने में अपेक्षाकृत 3–4 दिन का समय भी कम लगता है किन्तु इन के मिलाने से मशरूम के लिए तैयार किए गए खण्डों में बीमारी लगने तथा अन्य सूक्ष्मजीवों के आने की सम्भावना बढ़ जाती है।

उत्पादन की विभिन्न विधियाँ: स्पॉन मिले भूसे को कई प्रकार से प्रयोग में लाया जाता है:

1: पॉलीथीन की थैलियों में – 60 X 45 या 45 X 30 से.मी. के आकार वाली थैलियों में उनकी 2/3 ऊँचाई तक स्पॉन मिला भूसा भर कर, थैलियों का मुँह सुतली से बाँध देते है। थैलियों में 5–8 सें मी की दूरी पर 5–10 मि मी आकार के छेद करके मशरूम घर में टांड़ पर रख दिया जाता है। थैलियों में दूरी 25–30 से मी रखी जाती है या हेंगर के सहारे मशरूम घर में लटकाया भी जा सकता है।

2: लकड़ी के फ्रेम में– लकड़ी के फ्रेम, जिसका नाप 45 X 30 X 20 सेमी होता है। इस फ्रेम को पॉलीथीन शीट के ऊपर रख कर उसके अन्दर भूसा भर देते है। ऊपर से भी पॉलीथीन से ढ़ककर उनको रस्सी से लपेट कर मशरूम घर में टांड के ऊपर 25–30 सेमी की दूरी पर रख देते है।

3:पॉलीथीन की बेलनाकार (सिलैन्ड्रीकल) थैलियों में– इन थैलियों का आकार लम्बाई में 5–6 फुट तथा व्यास एक से डेढ़ फुट होता है। स्पॉन मिला भूसा भरने के बाद थैलियों में 1–2 इंच आकार के छेद, 8–10इंच दूरी पर करके इनको मशरूम घर की छत से लटका देते हो। पंक्तियों में इनकी परस्पर दूरी 40–45 सेमी तथा पंक्ति से पंक्ति की दूरी 2 फुट रहती है।

फसल का रख–रखाव: मशरूम घर में स्पॉन रन (भूसे में मशरूम का कवक जाल फैलने) के दौरान, तापमान 22–30° सें रखते है। इस दौरान मशरूम घर में प्रकाश तथा ऑक्सीजन (ताजी हवा) की आवश्यकता नहीं होती है, परन्तु साफ सफाई का पूरा ध्यान रखना चाहिये जिससे वहाँ कीड़े–मकोड़े आदि न पनपें। थैलियों में 10–15 दिन में सफेद रूई की तरह का कवक जाल पूरी तरह फैल जाता है। स्पॉन रन होने के बाद थैलियों की पॉलीथीन काट कर अलग कर दी जाती है। कवकजाल फैलने के कारण पॉलीथीन के अन्दर का भूसा खण्डों का आकार ले लेता है जिनको टांडों (रैक) पर वापस 25–30 सेमी की दूरी पर रख देते हैं। बेलनाकार 5–6 फुट वाली थैलियों में पॉलीथीन नहीं काटी जाती। तापमान 22–30° सें तथा आपेक्षिक आर्द्रता 85–90% के बीच रखते हैं व मशरूम घर में सुबह तथा शाम को कुल 2–3 घंटे ताजी हवा का प्रवाह किया जाता है। स्पॉन रन पूरा होने के 6–7 दिनों में बाद छोटे–छोटे मशरूम निकलने शुरू हो जाते है जोकि अगले 4–5 दिन में तोड़ने लायक हो जाते हैं। इस दौरान खण्डों में नमी बनाए रखने के लिए उनके ऊपर तथा मशरूम घर में जरूरत के अनुसार पानी का छिड़काव करना चाहिए।

तुड़ाई तथा उपज : जब ऑयस्टर मशरूम परिधि/किनारे से मुड़ना शुरू होने लगे, उससे पहले उनको तोड़ लेना चाहिए। तोड़ने के लिए अच्छी तरह साफ किए तेज चाकू से खण्डों की सतह के एक दम पास से मशरूम के तने को काट दिया जाता हैं। तने को तोड़ने वाली जगह से थोड़ा ऊपर से पकड़ कर घुमा कर, हाथ से भी तोड़ा जा सकता है। एक खण्ड से मशरूम तोड़ने के 8–10 दिन बाद फिर दोबारा उसमें मशरूम निकल आते है, इसे मशरूम फ्लश कहते है। पहले फ्लश में कुल मशरूम का 35 –40% मशरूम निकल आता है, जिनकी मात्रा आगे वाले फ्लश में कम होती जाती है। इस प्रकार करीब 45–50 दिन में तथा 4–5 फ्लश में पूरा मशरूम निकल आता है। खण्डों से पूरा मशरूम निकल आने के तुरन्त बाद इनको मशरूम घर से बाहर कर देना चाहिए, नहीं तो इनके द्वारा मशरूम घर में मक्खियाँ, कीड़े–मकोड़े तथा अन्य बीमारियाँ फैलने का खतरा रहता है। आमतौर पर सूखे भूसे की कुल मात्रा का 70–80 प्रतिशत (भार/भार) मशरूम निकलता है, लेकिन यदि मशरूम घर में नमी, प्रकाश तथा ताजी हवा की उचित देखभाल रखी जाए तथा साथ ही स्पानिंग के दौरान भूसे में 3–6 प्रतिशत चोकर आदि मिला दिया जाए तो सूखे भूसे के 100–125% तक ऑयस्टर मशरूम की उपज प्राप्त की जा सकती है।

प्ल्यूरोटस सजोरकाजू

प्ल्यूरोटस इओस

प्ल्यू. कौरानूकोपिएई

प्ल्यूरोटस ओपनशियाई प्ल्यूरोटसऔस्ट्रिएटस

दूधिया मशरूम (कैलोसायबी इण्डिका) का उत्पादन

उत्तर भारत के अधिकांश मैदानी भागों में बटन मशरूम की खेती मौसमी है, अर्थात इसकी खेती मध्य सितम्बर से मध्य मार्च तक की जाती है। मध्य मार्च के बाद क्योंकि

तापमान बढ़ना आरम्भ हो जाता है इससे, इस मशरूम का उत्पादन कठिन हो जाता है इसलिए अधिकांश उत्पादक मशरूम की खेती बन्द कर देते है, या कुछ लोग इसके बाद एक या दो फसल ऑयस्टर मशरूम की ले लेते है। मशरूम उत्पादक बटन मशरूम के अगले मौसम तक या तो कुछ नहीं उगाते या अन्य पारम्परिक फसलों की खेती करते हैं। यदि ये उत्पादक अपने मशरूम–उत्पादन–चक्र में दूधिया मशरूम (*कैलोसायबी इण्डिका*) को सम्मिलित कर लें तो आसानी से पूरे साल किसी न किसी मशरूम की खेती कर सकते है। इस मशरूम का रंग सफेद होता है और आकृति सफेद बटन मशरूम से मिलती जुलती है, लेकिन आधार भाग पर इसका तना अधिक मांसल, लम्बा और मोटा होता है जबकि डंडी की तुलना में इसकी टोपी (पीलियस) काफी छोटी होती है।

उत्पादन : दूधिया मशरूम की खेती गर्म और आर्द्र वातावरण में होती है। अधःस्तर में कवक जाल या स्पॉन के फैलने के लिए 25–32° से. तापमान उपयुक्त रहता है जबकि फलनकाय बनने के लिए अनुकूलतम तापमान 30–36° सें. के बीच होता है, यहाँ तक कि 40° सें. तापमान पर भी फलनकाय बनते रहते है। भारत के गर्म वातावरण वाले क्षेत्रों जैसे कि केरल, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश और तमिलनाडु आदि में जहाँ बटन मशरूम की खेती सम्भव नहीं है, वहाँ दूधिया मशरूम की खेती अधिक लोकप्रिय है। आपेक्षिक आर्द्रता 80–90% व्यवस्थित रखकर, उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में मार्च से लेकर अगस्त महीने के मध्य तक दूधिया मशरूम की खेती की जा सकती है।

अधःस्तर (सब्सट्रेट) तैयार करना: दूधिया मशरूम को विभिन्न प्रकार के कृषि अवशेषों जैसे कि अनाजों का भूसा, मक्का के भुट्टे, बाजरे की बालियाँ, गन्ने की सीठी/खोई आदि पर आसानी से उगाया जा सकता है। व्यवसायिक उत्पादन के लिए गेहूँ या धान का भूसा/पराली उपयोग में ला सकते है। प्रयोग में लाया जाने वाला भूसा या अन्य पदार्थ एक साल से अधिक पुराना नहीं होना चाहिए, यह नया और शुष्क होना चाहिए और बारिश में भीगा न हो अन्यथा फसल के दौरान संदूषकों के आने की सम्भावना रहती है जिससे मशरूम की फसल में विभिन्न रोग आ सकते है और परिणामस्वरूप पैदावार कम हो जाती है। भूसा या अन्य जो भी पदार्थ उपयोग में लाया जा रहा है उसे 5–8 सेमी लम्बाई के छोटे छोटे टुकड़ों में काटकर निम्नलिखित विधियों द्वारा उपचारित कर लेते है ताकि यह हानिकारक सूक्ष्मजीवों से मुक्त हो जाय और मशरूम की फसल अच्छी है।

1: **गर्म जल उपचार** : धान के भूसे को बोरियों में भरकर 12–16 घन्टे (रात भर) के लिए पानी में डुबोया जाता है। गेहूँ के भूसे को 24–36 घन्टे तक डुबो कर रख सकते हो। तत्पश्चात् भूसे से भरे इन बोरों को पानी से निकालकर 30–45 मिनट के लिए पक्के फर्श पर डाल देते हैं ताकि आवश्यकता से अधिक पानी इनसे निकल जाय। इसके बाद इन बोरों को 1–2 घन्टे तक उबलते पानी में डुबोया जाता है, कम से कम एक घन्टा पानी का तापमान 80° सें. रखते है।

2: **रासायनिक उपचार:** किसी ड्रम या भंडारण टैंक में भूसे को बाविस्टीन और फॉर्मेलीन मिले जल (7–8 ग्राम बाविस्टीन तथा 125 मि ली फार्मेलिन का 100 लीटर पानी में घोल) में 16–18 घन्टे तक भिगोकर

रासायनिक रूप से उपचारित करते है। भूसे को डुबो देने के पश्चात ड्रम या टैंक को ढक्कन या पॉलीथीन द्वारा ढ़क देना चाहिए।

3: **भाप द्वारा विसंक्रमण:** भूसे में भाप प्रवाहित कर भी विसंक्रमण किया जा सकता है। भूसे को भिगोकर एक कक्ष में रखकर भाप प्रवाहित करते हैं। यदि एक घन्टा रखें तो तापमान 90° सें, 2 घण्टे के लिए 80° सें और 12 घन्टे रखना हो तो तापमान 72° से बनाए रखा जाना चाहिए।

स्पॉन मिलाना :उपर्युक्त विधियों द्वारा भिगोने और उपचारित करने के बाद भूसे को बाहर निकाल देते है ताकि आवश्यकता से अधिक जल इससे निकल जाय और भूसा ठन्डा हो जाय। इस अवस्था में भूसे में जल की मात्रा 60–70% रहनी चाहिए जिसे हथेली–परीक्षण द्वारा जाँच सकते हैं। अब इसमें स्पॉन मिलाकर इसे पौलीथीन की थैलियों में भर सकते है। भूसा में स्पॉन 3–4% (भार/भार) या भूसे के शुष्क भार का लगभग 1–2% रखते हैं। स्पॉन मिलाने की निम्नलिखित विधियों में से किसी एक को चुन सकते है।

1. एकसार स्पॉन मिलाना : तैयार उपचारित भूसे को साफ–सुथरे पक्के फर्श पर फैला देते हैं और स्पॉन को इसके ऊपर एकसार रूप से मिलाकर 60 X 45 सेमी या 45 X 30 सेमी परिमाण के एवं 25–30 सेमी ऊँचाई के पॉलीथीन के थैलों या ट्रे में भर दिया जाता है व हल्का सा दबा कर थैलों का मुँह सुतली या धागे से बाँध देते है, और स्पॉन फैलने के लिए इन्हें मशरूम घर में रख दिया जाता है। थैलों में चारों ओर दो दो इंच की दूरी पर 5–10 मिमी आकार के छेद कर देते हैं ताकि कवक जाल को हवा मिलती रहे।

2. पर्तों में स्पॉन मिलाना : उपचारित भूसे को पॉलीथीन के थैलों में 8–10 सेमी की ऊँचाई तक भर कर उसकी ऊपरी सतह पर स्पॉन के एक भाग को एक सार रूप से फैला देते है। तत्पश्चात् लगभग उतनी ही ऊँचाई तक भूसा पुनः भरकर पुनः स्पॉन फैलाते है। इस प्रकार से 30 सेमी ऊँचाई तक स्पॉन की कुल 3 पर्तें बिछा देते है और इन थैलों में चारों तरफ छेद करने के बाद उनका मुँह बन्द कर स्पॉन फैलने के लिए मशरूम घर में रख देते है।

स्पॉन का फैलना: स्पॉन फैलने के दौरान मशरूम घर को बन्द (अंधेरा) रखा जाता है और तापमान 25–32° सें. तथा आपेक्षिक आर्द्रता 80–90% बनाए रखते है। इन परिस्थितियों में 15–20 दिन के भीतर, सफेद रूई के समान कवक–जाल पूरे भूसे में फैल जाता है।

केसिंग मिट्टी तैयार करना: केसिंग से लगभग एक सप्ताह पहले केसिंग–मिश्रण तैयार कर लेना चाहिए। दोमट मिट्टी और रेत छानकर, भार के अनुसार 3:1 के अनुपात में मिला लेते है। तत्पश्चात इस मिश्रण में भार के अनुसार 10% चाक पाउडर (कैल्शियम कार्बोनेट)/चूना मिला दिया जाता है।

केसिंग मिश्रण का पाश्च्यूरिकरण/विसंक्रमण: यह पाश्च्यूरिकरण/विसंक्रमण प्रक्रिया भाप द्वारा अथवा रासायनिक विधि द्वारा किया जा सकता है। भाप द्वारा पाश्च्यूरिकरण के लिए इस मिश्रण में भाप प्रवाहित की जाती है और दो घन्टे तक तापमान 80° सें. बनाए रखते है। रासायनिक विसंक्रमण हेतु इसमें 4% फॉर्मेलीन और 0.01% बाविस्टीन का पानी में घोल मिलाया जाता है। केसिंग मिश्रण में यह घोल भली–भांति मिलाकर उसे पॉलीथीन से ढ़क देते है, व 3–4 दिन के पश्चात् इसे खोल देते है। यह सावधानी रखें कि थैलों (जिनमें स्पॉन फैल चुका हो) में फैलाते समय इस केसिंग मिश्रण में फॉर्मेलीन की गंध शेष ना रहें।

केसिंग या मिट्टी की परत चढ़ाना: जब थैलों में स्पॉन पूर्णरूपेण फैल चुका हो तो इन्हें खोलकर ऊपरी सतह पर 2–3 सेमी मोटी केसिंग पर्त फैला दी जाती है। केसिंग के पश्चात् मशरूम घर का तापमान और आपेक्षिक आर्द्रता क्रमशः 30–35° सें और 80–90% बनाऐ रखते है, 8–10 दिनों के भीतर दूधिया मशरूम का कवकजाल इनमें फैल जाता है। कवकजाल फैलने के बाद मशरूम घर में प्रतिदिन 3–4 घन्टे ताजा हवा आनी चाहिए। अगले 4–5 दिनों में इस मशरूम के आद्य अंग या पिन दिखाई पड़ने लगते हैं जो 6–7 दिनों में फलनकायों में विकसित हो जाते है।

फलनकायों की तुड़ाई व उपज : जब दूधिया मशरूम की टोपी का व्यास 5–7 सेमी का हो जाता है तब इन्हें तोड़ लिया जाता है। इसके लिए या तो तेज–चाकू का प्रयोग करते हैं जिसके द्वारा आधार भाग से मशरूम काट लिए जाते है अथवा मशरूम को हल्का सा नीचे दबाते हुए इधर–उधर घुमाकर तोड़ लेना चाहिए। तने या स्टाइप का निचला केसिंग मिट्टी लगा भाग काटकर अलग कर दिया जाता है। मशरूम के फलनकाय धोकर और छाया में सुखा. कर पैकेटों में बन्द कर दिए जाते है। अनुकूल परिस्थितियों में 1 किग्रा धान के भूसे से लगभग 1 किग्रा ताजा मशरूम की उपज प्राप्त की जा सकती है।

पराल मशरूम (वोल्वेरिएला प्रजातियां) का उत्पादन

पराल मशरूम पूर्वी एशिया के देशों में अत्यन्त लोकप्रिय है। भारतवर्ष में इसकी खेती बंगाल के तटवर्ती क्षेत्रों, केरल, तमिलनाडु, उड़ीसा एवं आंध्र प्रदेश में की जाती है। पराल मशरूम की खेती सर्वप्रथम चीन में आरम्भ हुई थी, इसलिए इसे 'चीनी मशरूम' भी कहा जाता है। गुजरात के तटवर्ती क्षेत्राों में भी इस खुम्ब की खेती की प्रबल संभावनाएं है जहाँ यह अभी तक अधिक लोकप्रिय नहीं है। यह खुम्ब गहरे धूसर (सलेटी) रंग का होता है। खुम्ब की खेती गर्म एवं आर्द्र वातावरण में होती है, जहाँ का तापमान 30–40° सें के बीच तथा आपेक्षिक आर्द्रता 80–90% के बीच रहती है। दिल्ली और इसके समीपवर्ती राज्यों में भी, अप्रैल से लेकर अगस्त तक इसकी खेती सम्भव है। धान पराल खुम्ब (वॉल्वेरिएला) की सामान्यतया उगाई जाने वाली किस्में, वॉ. वॉल्वेसिआ, वॉ. डिप्लेसिआ और वॉ. एस्क्यूलेंटा है। यह खुम्ब प्रायः धान के पराल (पुआल) पर उगाई जाती है। यह खुम्ब मशरूम घर अथवा खुले में, दोनों प्रकार से उगाई जा सकती है। छोटे उत्पादक प्रायः इसे खुले में ही उगाते हैं।

खुले स्थान में मशरूम उत्पादन : इस विधि में, शेड (छायादर स्थान) के नीचे मिट्टी और ईंटों की सहायता से 15–20 सेमी ऊँचे और 100 X 60 सेमी परिमाण के बैड/आधार बनाए जाते हैं ताकि खुम्ब की फसल को वर्षा और सीधे प्रकाश से बचाया जा सके। धान की पराल को एक सिरे पर बाँध कर 7–8 सेमी व्यास के झाड़ू की तरह के बंडल बना लेते है, इन बंडलों की लम्बाई 70–80 सेमी के बीच रखी जाती है। पराल के रासायनिक निर्जीवीकरण (जीवाणुनाशन) हेतु बावस्टीन और फॉर्मेलीन घोल (प्रति 100 ली पानी में 7 ग्रा बावस्टीन और 125 मिली फॉर्मेलीन)का प्रयोग किया जाता है । पराल के बंडलों को उपर्युक्त रसायन मिले पानी के टैंक में 16–18 घन्टे डुबोने के बाद पॉलीथीन शीट से ढ़क दिया जाता है। बाद में इन बंडलों को पानी से निकाल कर पक्के फर्श पर डाल दिया जाता है ताकि फालतू पानी बंडलों से निकलकर बह जाए। शेड के नीचे बने बैड के ऊपर ठीक उसी के परिमाण (साइज) का बाँस से बना फ्रेम रखा जाता है। बाँस के फ्रेम के ऊपर रासयनिक उपचारित पराल के 4–5 बंडल रख दिए जाते है। इन बंडलों के बंधे हुए सिरे एक ही दिशा में रखे जाते है। अब इनके ऊपर 4–5 बंडल रख दिए जाते है, लेकिन इस बार बाँधे हुए सिरे नीचे वाले बंडलों से विपरीत दिशा में रखते है। इस प्रकार से कुल 8–10 बंडलों से पहली पर्त बन जाती है। किनारे पर लगभग 8–12 सेमी छोड़कर अब इन बंडलों पर, स्पॉन (मशरूम का बीज) बिखेर दिया जाता है और इसके बाद ऊपर से अरहर की दाल/चने का आटा/धान या गेहूँ का चोकर भी डाला जा सकता है। इसी प्रकार से बंडलों की दूसरी, तीसरी और चौथी पर्तें भी बनायी जाती है, और उनमें स्पॉन मिलाया जाता है। अन्त में सम्पूर्ण बैड को पारदर्शी पॉलीथीन/एल्काथीन शीट से (बंडलों की पराल से जरा हट कर) ढ़क देते है।

बैडों की देखभालः बिजाई (स्पॉनिंग) के 7–8 दिनों में मशरूम का कवक जाल पराल के भीतर अपनी पकड़ बना लेता है। कवक जाल की वृद्धि के लिए 32–36° सें तापमान सबसे अच्छा है। स्पॉन ठीक से फैल जाने के बाद पॉलीथीन शीट उतार देते है। दिन में एक बार फुहारे (स्प्रेयर) से पानी का छिड़काव अवश्य करें।

मशरूम घर (इन्डोर) में उत्पादनः सैद्धान्तिक रूप से धान पराल और बटन खुम्ब दोनों की बन्द कमरे

में खेती का तरीका एक जैसा ही है। धान पराल को पास्चुरीकृत (आंशिक निर्जीवीकृत) किया जाता है जिसके फलस्वरूप कम्पोस्ट में तापरागी सूक्ष्मजीव (थर्मोफिलिक माइक्रोऑर्गेनिज़्म) उत्पन्न होते है। जो कम्पोस्ट के पोषक पदार्थ को धान पराल खुम्ब के कवक जाल के लिए आसानी से उपलब्ध हो सकने वाली अवस्था में परिवर्तित कर देते हैं ताकि उसकी समुचित वृद्धि हो सके, साथ ही सूक्ष्मजीव, जैव–मात्रा के रूप में भी मशरूम के कवकजाल को भोजन के रूप में प्राप्त होता हो। इसलिए धान पराल खुम्ब की मशरूम–घर में खेती पास्चुरीकृत कम्पोस्ट पर ही की जाती है। पास्चुरीकृत कम्पोस्ट में चूंकि पोषक तत्व आसानी से उपलब्ध होते रहते हैं इसलिए अच्छी उपज प्राप्त होती है। मशरूम घर खूब हवादार और पक्के फर्श वाला होना चाहिए जिसमें शैल्फ और रैक बनी हों। मशरूम घर में 50 सेमी के फासले पर 4 रैक बनाए जाते हैं। सबसे निचला शैल्फ़ फर्श से 30 सेमी की ऊँचाई पर बनाते है। मशरूम घर में 2–4 सेमी व्यास का एक लोहे का पाइप भी फैलाया जाता है जिसके द्वारा बॉयलर से भाप, इस कमरे में भेजी जाती है। इस पाइप में भाप निकलने के लिए छोटे छोटे छेद होते हैं।

अधःस्तर तैयार करना : धान पराल खुम्ब की खेती के लिए केले की पत्तियाँ, धान का पराल और कपास के बेकार बचे अपशिष्ट पदार्थ आदि उपयुक्त सबस्ट्रेट है। मशरूम घर में खेती करने के लिए, धान पराल और कपास अवशिष्ट को 1:1 के अनुपात (बराबर मात्रा) में मिलाकर अधिक उपज लगातार मिलती रहती है।

कम्पोस्ट बनानाः यह प्रक्रिया दो चरणों में पूरी होती है। पहला चरण खुले में सम्पन्न होता है जबकि दूसरे चरण में कम्पोस्ट का पास्चुरीकरण और अनुकूलन होता है।

प्रथम अवस्थाः धान पराल और कपास अवशिष्ट को भार के आधार पर 1:1 के अनुपात में मिलाने के पूर्व अलग अलग 12–16 घण्टे तक 1% चूना मिले पानी में भिगोया जाता है। इस प्रकार से भिगोए पराल और कपास अवशिष्ट को भली भाँति मिलाकर उसका 1.5 मी. ऊँचा ढ़ेर बना देते है। दो दिन बाद इस ढ़ेर को पहली पलटाई करते हैं, और उलट पलट करते समय इसमें 5% (भार/भार के आधार पर) धान का चोकर भी मिला दिया जाता है। आवश्यकता अनुसार इसमें पनी का छिड़काव भी कर सकते हैं और पुनः ढ़ेर बनाकर छोड़ देते हैं।

द्वितीय अवस्था (मशरूम घर के भीतर कम्पोस्टिंग): प्रथम अवस्था के अगले 2–3 दिनों बाद कम्पोस्ट की मशरूम घर के भतीर 14–15 सेमी मोटी पर्त बिछा दी जाती है। मशरूम घर को बन्द कर बॉयलर से लोहे के पाइप द्वारा भाप प्रवाहित कर तापमान 40–45° व अगले दो दिनों (48 घन्टे) बाद लगभग 50° सें. हो जाता है व 2–3 घन्टे तक 60–65° सें बनाए रखते है। तत्पश्चात भाप की आपूर्ति बन्द कर देते है और ताजी ठन्डी हवा अन्दर आने देते है। अगले 8 घन्टों के दौरान मशरूम घर का तापमान आगामी 12 घन्टों तक 50–52° सें. तक बनाए रखते है जब तक कि कम्पोस्ट से अमोनिया की गन्ध आना समाप्त न हो जाय। इस प्रकार से यह प्रक्रिया 4–5 दिनों में पूरी हो जाती है।

स्पॉनिंग या बिजाई : जब मशरूम बैड से अमोनिया की गन्ध आना बन्द हो जाए तो समझिए कि कम्पोस्ट तैयार हो गई है। स्पॉन कम्पोस्ट में 2% (भार/भार के आधार पर) मिलाया जाता है। 8 मी^{2} क्षेत्रफल के कम्पोस्ट में लगभग 1 किग्रा स्पॉन की आवश्यकता होती है। स्पॉन मिलाने के बाद मशरूम घर को 3–4 दिनों के लिए बन्द कर तापमान 34–38° सें. के बीच व आपेक्षिक आर्द्रता 80–85% बनाए रखते है। बीच बीच में थोड़ा ताजी हवा का आदान–प्रदान/आवागमन भी होता रहना चाहिए। 4–5 दिनों के भीतर कम्पोस्ट में कवक जाल फैल जाता है। तब खिड़की–दरवाजे खोल कर मशरूम घर का तापमान थोड़ा कम 28–30° सें. कर देते है। यदि बैड की सतह सूखी प्रतीत हो तो पानी का छिड़काव कर देना चाहिए।

फलनकायों का बनना व तुड़ाईः बिजाई (स्पॉनिंग) के 15–20 दिन के बाद जब छोटे–छोटे फलनकाय बनना आरम्भ हो जाएं तो रोज़ाना 3–4 बार, कम से कम 15 मिनट के लिए कमरे की हवा का परिसंचरण (सर्कुलेशन) कर देना चाहिए। तापमान 32° सें. और आपेक्षिक आर्द्रता 85–90% के बीच रखने चाहिए। अगले 4–5 दिनों में मशरूम, तुड़ाई के योग्य, हो जाते है। फलनकाय खुलने

के ठीक पहले, मशरूम की तुड़ाई कर लेनी चाहिए। पहली तुड़ाई के 5–6 दिन बाद पुनः दूसरे मशरूम तोड़ने योग्य हो जाते हैं।

फसलोत्पादन व भण्डारणः खुले स्थान में मशरूम उत्पादन विधि में केवल धान पराल का प्रयोग करने पर लगभग 15–20 किग्रा/100 किग्रा सबस्ट्रेट, पैदावार मिल सकती है। मशरूम घर (इन्डोर) में उत्पादन विधि में धान पराल प्रयोग करने पर मशरूम उत्पादन शुष्क भार का 20–25% तथा धान पराल और कपास अपशिष्ट को बराबर अनुपात में मिलाकर प्रयोग करने पर इनके शुष्क भार का 22–30% खुम्बी प्राप्त की जा सकती है। धान पराल खुम्ब अत्यन्त कोमल होते हो और शीतग्रह (प्रशीतित अवस्था) में इनका भण्डारण अधिक समय तक नहीं किया जा सकता (3–4 दिन तक 5– 8° सें. तापमान पर) है। इसलिए कोशिश करनी चाहिये के तुड़ाई के तुरन्त बाद इस मशरूम को बाजार में बेचने के लिए भेज दिया जाय। आवश्यकता होने पर इस खुम्ब को हवादार स्वच्छ जगह में सुखाया भी जा सकता है।

मशरूम उत्पादन से लाभः

1. मशरूम उगाने के लिए कृषि व अन्य पौधों से प्राप्त व्यर्थ पदार्थो जैसे अनाज का भूसा आदि का उपयोग होता है, जिसे वे प्रोटीन युक्त पदार्थो में बदल देते हैं।
2. मशरूम उगाने के बाद बची हुई कम्पोस्ट, पौधों के लिए बहुत उपयोगी कार्बनिक खाद है।
3. सब्जी व अन्य व्यंजनों के साथ–साथ मशरूम का विभिन्न प्रकार की दवाइयों के रूप में भी उपयोग किया जाता है।
4. मशरूम किसी भी प्रकार की जमीन पर उगाये जा सकते हैं, बंजर व व्यर्थ भूमि भी उपयोग में लाई जा सकती है। अतः छोटे किसान भी कम लागत में खुम्ब की खेती कर सकते हैं।
5. दो फसल चक्र के बीच प्राप्त समय में मशरूम उगाकर समय का सदुपयोग किया जा सकता है।
6. मशरूम उत्पादन से जरूरत मंद लोगों को मजदूरी मिल जाती है इस तरह यह स्वरोजगार का भी साधन है। यह ग्रामीण इलाकों में बेरोजगार युवकों के लिए एवम् महिलाओं, गृहणियों एवं उनके परिवार के लिए आत्मनिर्भरता व रोजगार का साधन हो सकता है।
7. विश्व में इसके निर्यात की प्रबल संभावनाएं है।
8. मशरूम का प्रति यूनिट एरिया उत्पादन अन्य अनाजों व कृषि उत्पादों से ज्यादा होता है।

मशरूम उत्पादन में सावधानियाँ

1. मशरूम–हाऊस व उसके आसपास साफ सफाई का विशेष ध्यान रखना चाहिए। यदि मशरूम उत्पादन की विभिन्न प्रक्रियाओं का नियमपूर्वक पालन किया जाता है, तो सामान्यतया मशरूम में कोई भी बीमारी नहीं आती। इस दौरान मशरूम की फसल में यदि कोई बीमारी आ जाय तो विशेषज्ञ की सलाह से उचित दवा का सही समय पर और बताई गई सही मात्रा में छिड़काव करना चाहिए।
2. फफूँद/जीवाणु/विषाणु, मशरूम में विभिन्न प्रकार की बीमारी लगा देते है। इन बीमारियो से बचाने के लिए कीटनाशक, जीवणुनाशक, फफूँदनाशक आदि दवाइयों का छिड़काव करना चाहिए। ध्यान रहें फफूँद जनित बीमारियों के लिए डाइथेन एम–45/जिनैव (0.2%) या बैविस्टिन (0.5%), टापसिन (0.5%) या कैलसियम हाइपोक्लोराइट 0.15% का पानी के साथ मिलाकर छिड़काव करना चाहिए। जीवाणु जनित बीमारियों के लिए 0.05% ब्लीचिंग पाउडर/0.02% स्ट्रप्टोमाइसीन/0.03% आक्सीटेट्रा साइक्लिन को पानी के साथ मिलाकर छिड़काव करना चाहिए। फार्मेकिन का 4% घोल या नीम जनित बायोपेस्टीसाइट का छिड़काव करने से सभी कीट आदि नियंत्रित हो जाते है। कीटनाशकों का प्रयोग/छिड़काव मशरूम हाऊस की दीवारों, ट्रे अथवा रैकों के बीच और फर्श पर ही करना चाहिए, कभी भी फसल के ऊपर इनका छिड़काव न करें। अगर छिड़काव जरूरी हो तो फलनकाय की तुड़ाई करने के बाद ही छिड़काव करें।

मृदा स्वास्थ्य, फसल उपज एवं लाभ के लिए संतुलित उर्वरकों का उपयोग

विनोद कुमार शर्मा, सर्वेद्र कुमार एवं कपिल आत्माराम चोभे
मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विज्ञान संभाग,
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली – 110012

भारत देश में कृषि उपज के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई है इसका पूरा श्रेय फसलों की अधिक उपज देने वाली प्रजातियॉ, बढे हुए सिंचित क्षेत्र, उर्वरकों के प्रयोग में हुई वृद्धि तथा वैज्ञानिकों एवं कृषकों की कड़ी मेहनत को जाता है। खाद्यान उत्पादन में हुई वृद्धि में उर्वरकों का योगदान 50 प्रतिशत तक माना जाता है। साथ ही साथ फसलों द्वारा भूमि से पोषक तत्वों की उपभोग की गई मात्रा उर्वरकों द्वारा उनकी पूर्ति की तुलना में बहुत कम है। उर्वरकों की अपर्याप्त मात्रा एवं असंतुलित अनुपात में प्रयोग होने के कारण मिट्टी की उर्वरा शक्ति क्षीण हो जाती है जो अधिक उपज लाभ एवं मृदा स्वास्थ के लिए नुकसानदायक है। अधिक उपज प्राप्त करने के लिए उर्वरकों का संतुलित प्रयोग अति आवश्यक है। हमारे देश के किसान वैज्ञानिक संस्तुति पर आधारित उर्वरकों का प्रयोग न करके अपनी मर्जी और बजट के हिसाब से उर्वरकों का प्रयोग करते है लेकिन अन्य देशों की तुलना में हमारे देश में प्रति हैक्टेयर उर्वरक उपयोग बहुत कम व असंतुलित मात्रा में हो रहा है। पौध पोषक तत्वों में बढता असंतुलन भूमि की उर्वरा शक्ति व कृषि उपज बढाने में बाधक है। उर्वरकों के संतुलित प्रयोग से फसलों के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की सही मात्रा और सही अनुपात में पूर्ति होती है इससे मिट्टी की उर्वरा शक्ति में सुधार होता है, उपज में वृद्धि के साथ उत्पाद की गुणवत्ता में वृद्धि होती है। संतुलित उर्वरक प्रयोग से पर्यावरण में भी वांछित सुधार होता हैं। उल्लेखनीय है कि उर्वरकों से की गयी पूर्ति की तुलना में फसलों द्वारा भूमि से अधिग्रहण की गई पोषक तत्वों की मात्रा अधिक रही है जिससे मिटृटी की उर्वरा शक्ति में निरन्तर ह्रास हो रहा है। अतः हमारे देश की औसत उपज बहुत कम है जिसे उर्वरकों के संतुलित प्रयोग एवं उन्नत कृषि तकनीक द्वारा फसलों की उपज बढाने की अत्यधिक गुंजाइश है।

उर्वरकों का असंतुलित उपयोग

हमारे देश में न केवल उर्वरकों का असंतुलित मात्रा मे प्रयोग हो रहा है बल्कि कम मात्रा भी है। जिसमें नत्रजन का अंश 60–70 प्रतिशत, फॉस्फोरस का 20–30 प्रतिशत एवं पोटाश का 10 प्रतिशत है, जबकि नत्रजन, फॉस्फोरस और पोटाश का उचित अनुपात 4:2:1 माना जाता है। दलहनी फसलों में इन तत्वों की संस्तुति 1:2:2 या 1:2:3 के अनुपात में की जाती है, जो नत्रजन की तुलना में फॉस्फोरस और पोटाश की मात्रा दो से तीन गुनी अधिक होनी चाहिए। किसानो के अनुसार अब दलहनी एवं तिलहनी फसलों में बीमारी एवं कीडों का प्रकोप अधिक होता है जिससे इन फसलों का उत्पादन घटता जा रहा है परन्तु इसका मुख्य कारण इन फसलों में पोषक तत्वों का असंतुलित मात्रा मे प्रयोग है। यदि नत्रजन के साथ ही फॉस्फोरस और पोटाश का सही मात्रा में प्रयोग किया जाये तो फसल स्वस्थ होगी, बीमारी और कीडों का प्रकोप कम होगा और इन फसलों से भरपूर उत्पादन संभव है। भारतीय मृदाओं में प्रमुख पोषक तत्वों के साथ–साथ गौण एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी होती जा रही है। उर्वरकों की अपर्याप्त मात्रा एवं असंतुलित उपयोग के कारण उर्वरक उपयोग की क्षमता में कमी होती जा रही है। विभिन्न दीर्घकालीन परीक्षणों मे पाया गया है कि नत्रजन के प्रयोग करने से उपज में होने वाली वृद्धि दर घट गयी है और फॉस्फोरस और पोटाश के प्रयोग द्वारा उपज की वृद्धि दर में अत्यधिक वृद्धि हुई क्योंकि सघन कृषि के अन्तर्गत मिटृटी में उपलब्ध फॉस्फोरस और पोटाश की मात्रा में भारी कमी हुई, अनेक क्षेत्रों में गौण एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों में कमी हुई है। अगर सूक्ष्म पोषक तत्वों के ह्रास की कमी को शीघ्र रोका न गया तो भविष्य में फसलों की पैदावार में कमी के साथ–साथ

फसलों में बिमारियों का भी भारी प्रकोप होने की संभावना भी अधिक होती है।

फसल उपज में वांछित वृद्धि न होने के प्रमुख कारणः

- मृदा में उपलब्ध पोषक तत्वों की सही मात्रा की जानकारी न होना।
- विभिन्न फसलों की वांछित उपज के लिए पोषक तत्वों की आवश्यक मात्रा का ज्ञान न होना।
- उर्वरकों का असंतुलित उपयोग ।
- गौण एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों में कमी।
- उर्वरकों के प्रयोग की गलत विधि एवं समय।
- अनुचित जल प्रबन्धन एवं अत्यधिक भू–जल दोहन।
- फसलों में कीट एवं खरपतवारों की समस्या का समय से नियन्त्रण न हो पाना।
- लगातार एक ही फसल चक्र का अपनाने से मृदा के भैतिक एवं रसायनिक गुणों में गिरावट।
- मिट्टी में लवणीयता–क्षारीयता की समस्या का विकसित होना।
- भूमि में जीवांश खाद के कम और न के बराबर प्रयोग के कारण मृदा कार्बन की कमी होना।

संतुलित उर्वरक प्रयोग के लिए म्दा परीक्षणः

सघन खेती के फलस्वरुप मृदा में न केवल प्रमुख पोषक तत्वों की कमी हुई है बल्कि गौण और सूक्ष्म पोषक तत्वों की भी कमी हो गयी है ऐसी परिस्थिति में मिट्टी परीक्षण का विशेष महत्व हो जाता है। अतः मृदा परीक्षण के आधार पर केवल उन्हीं पोषक तत्वों के प्रयोग की संस्तुति की जाती है जिनकी मृदा में कमी होती है। अतः मृदा परीक्षण के आधार पर किया गया उर्वरक प्रयोग अधिक संतुलित और अधिक लाभदायक होता है क्योंकि निम्न, मध्यम एवं उच्च उर्वरता वर्ग की दशा में अलग–2 मात्रा में उर्वरक डालने की संस्तुति की जाती है इस प्रकार उर्वरकों की मात्रा कम या अधिक होने की संभावना कम होती है। संतुलित उर्वरक उपयोग को बढावा देने के लिए ठोस कदम उठाने की आवश्यकता है मिट्टी जाँच सेवायें जिन्हें संतुलित उर्वरक उपयोग का आधार कहा जाता है, के प्रति किसानों का विश्वास कायम कराना एवं इन्हें लोकप्रिय बनाना बहुत आवश्यक हो गया है क्योंकि किसानों को जबतक यह मालुम न हो कि उनके खेत मे किस तत्व की कमी है तब उर्वरकों का संतुलित मात्रा में उपयोग कैसे किया जा सकता है।

उर्वरकों का संतुलित उपयोगः

मृदा में पोषक तत्वों की कमी के अनुसार तथा फसलों की आवश्यकतानुसार उर्वरकों एवं खादों का प्रयोग संतुलित–उर्वरक प्रयोग कहा जाता है। मृदा में प्रारम्भिक उर्वरा शक्ति को ध्यान में रखते हुए पोषक तत्वों की कमी के अनुसार पोषक तत्वों की उचित मात्रा प्रयोग करना अनिवार्य होता है। किसानो के खेतों में किये गये प्रयोगों के परिणामों से पता चला है कि वांछित उपज के लिए नत्रजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश के साथ जिंक एवं गंधक पोषक तत्वों का संयुक्त प्रयोग करना आवश्यक है क्योंकि सघन खेती के अर्न्तगत मिट्टी की उर्वरा शक्ति में बहुत तेजी से बदलाव होने के कारण वांछित उपज के लिए नत्रजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश के साथ ही गौण एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रयोग आवश्यक हो गया है। धान–गेंहूँ प्रणाली प्रयोग करने वाले क्षेत्रों में जिक की कमी के लक्ष्ण फसलों में दिखाई दे रही है। दलहनी और तिलहनी फसलों की उपज वृद्धि में गंधक का महत्व भी स्पष्ट दिखाई देता है। पौधों के लिए आवश्यक विभिन्न पोषक तत्वों के विषिष्ट कार्य के कारण एक पोषक तत्व दूसरे का विकल्प नहीं हो सकता जैसे नत्रजन पौधों की वृद्धि, प्रोटीन एवं क्लोरोफिल के निर्माण में विशेष रुप से सहायक होता है। इसी प्रकार फॉस्फोरस का कार्य जडों के विकास से संबधित है तथा पोटाश की उचित पूर्ति से पौधा मजबूत रहता है जिससे उसकी रोग प्रतिरोधता क्षमता में वृद्धि होती है।

उर्वरकों के संतुलित प्रयोग हेतु जिला, विकास खण्ड, पंचायत एवं गाँव स्तर पर कार्यशाला, प्रशिक्षण एवं प्रदर्शन प्रयोग करना आवश्यक हो जाता है जिससे मिट्टी की उर्वरा शक्ति/मृदा स्वास्थ बनाये रखने के साथ वांक्षित उपज भी प्राप्त होती रहेगी। उर्वरकों के साथ जैविक खादों, फसल अवशेष, जैव उर्वरकों आदि का समेकित रुप में प्रयोग भी लाभकारी सिद्ध होता है। संतुलित उर्वरक के उपयोग में यह आवश्यक हो जाता है कि उर्वरकों की समय पर उपलब्धता सुनिश्चित कराना बहुत जरुरी है।

सीमान्त कृषकों की अधिक आय हेतु बागवानी आधारित समन्वित कृषि प्रणाली मॉडल

राजीव कु. सिंह, विनोद कु. सिंह, प्रवीण कु. उपाध्याय एवं एस.एस. राठौर
सस्य विज्ञान संभाग, भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ आज भी 70% से अधिक ग्रामीण जनसंख्या अपने जीविकोपार्जन के लिये खेती पर निर्भर है तथा 86% किसान सीमान्त व लघुवर्गीय श्रेणी में आते है और इसके बावजूद हम आज भी कृषि को रोजगार के रूप में नहीं देखते। इसका मुख्य कारण कृषि में संसाधनों का बढ़ता हुआ मूल्य तत्पश्चात उत्पादन लागत में वृद्धि, फसल का उचित मूल्य ना मिलना, साथ ही साथ दिन प्रतिदिन बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण जोतों के आकार का छोटा होना। एक तरफ हरित क्रांति के शुरूआत से लेकर अब तक हमने संसाधनों के अभाव में (श्रमिक व सिंचाई) एकल फसल प्रणाली पर ज्यादा ध्यान केन्द्रित किया है वहीं दूसरी ओर कुछ एक फसल जैसे धान, गेंहू आदि को ही समर्थन मूल्य प्राप्त होने के कारण किसान लगातार एक ही तरह के फसलोत्पादन में लगे है। परन्तु हमारी जो भी जरूरतें जैसे– धान्य के साथ साथ दाल, तिलहन, सब्जियाँ, फल–फूल, दुग्ध, मछली एंव अण्डे आदि की भरपाई तथा साथ ही साथ वर्ष भर रोजगार की पूर्ति एकल फसल प्रणाली से नहीं इस लिए यह आवश्यक हो गया है की कृषि में फसल के साथ साथ अन्य घटको को भी समेकित किया जाए जिससे किसान को सतत आय मिलती रहे साथ ही विभिन्न घटकों के अवशेषों को भी संसाधनों के रूप में पुनर्चक्रण किया जाए जो पर्यावरण की दृष्टि से भी लाभकारी हो।

समन्वित कृषि प्रणाली की परिभाषा

समन्वित कृषि प्रणाली का तात्पर्य कृषि की उस प्रणाली से है जिसमें कृषि के विभिन्न घटक जैसे फसल उत्पादन, सब्जी उत्पादन, फल उत्पादन, पशु पालन, बत्तख पालन, मुर्गी पालन, वानिकी तथा मधुमक्खी पालन इत्यादि को इस प्रकार समेकित किया जाता हैं, वे एक दूसरे के पूरक हों जिससे संसाधनों की क्षमता, उत्पादकता एवं लाभप्रदता में पर्यावरण को सुरक्षित रखते हुए वृद्धि की जा सके इसे समन्वित कृषि प्रणाली कहते हैं। यह एक स्व–सम्पोषित प्रणाली है इसमें अवशेषों के चक्रीय तथा जल एवं पोषक तत्वों का निरंतर प्रवाह होता रहता है जिससे कृषि लागत में कमी आती है और कृषक की आमदनी में वृद्धि एवं साथ ही रोजगार भी मिलते रहें।

एकीकृत कृषि प्रणाली के घटकः प्राकृतिक संसाधनों के प्रबन्धन और मृदा की जीवन्तता को बनाए रखना खेत को टिकाऊ प्रदान करना। इसके अन्तर्गत निम्न घटक/उद्यम शामिल हैं, जो इस प्रकार हैंः

1. **तापमान प्रबंधनः** मृदा को आच्छादित रखना, पेड़–पौधे और बाग लगाना और खेतों की मेढ़ों पर झाड़ियाँ उगाना।
2. **मृदा प्रबंधनः** मृदा को उपजाऊ बनाना रसायनों का आवश्यकतानुसार उपयोग, फसली अपशिष्ट का पलवार के रूप में उपयोग, जैविक और जैव उर्वरकों का उपयोग, फसलों को अदला–बदली करके बोना और विविधता, मृदा की जरूरत से ज्यादा जुताई न करना और मृदा को जैव पलवार से आच्छादित रखना।
3. **जल उपयोग एवं संरक्षणः** वर्षा जल संग्रहण का निर्माण कर जल को संग्रहीत करके उपयोग में लाया जा सकता है।
4. **कृषि आदान में आत्म निर्भरताः** धान्य, दलहन, तिलहन एवं सब्जी बीजों का अधिक से अधिक उत्पादन करना, वर्मी कम्पोस्ट, खेतों के लिये कम्पोस्ट खाद तैयार करना और वनस्पतियों का खाद बनाना।
5. **पॉली हाउस में सब्जियाँ एवं फूलों का उत्पादनः** पॉली हाउस में बेमौसमी उत्पादन के लिए वही सब्जियाँ उपयुक्त होती हैं जिनकी बाजार में माँग अधिक हो और

पॉलीहाउस में खीरा, जरबेरा एवं टमाटर की खेती

वे अच्छी कीमत पर बिक सकें। मैदानी क्षेत्रों में शिमला मिर्च, टमाटर, खीरा, लौकी वर्गीय सब्जियाँ एवं जरबेरा आदि फसलें ली जा सकती हैं। फसलों का चुनाव क्षेत्र के आधार पर कुछ भिन्न हो सकता है।

6. **फल और बागवानी:** फल और बागवानी का उत्पादन लेने के लिए वही फल उपयुक्त होती हैं जिनकी बाजार में माँग अधिक हो और वे अच्छी कीमत पर बिक सकें। मैदानी क्षेत्रों के लिए आम, अमरुद, अनार, किन्नू, पपीता, फालसा, आँवला, करौंदा, नींबू व अंतः फसल (सब्जियाँ) आदि ली जा सकती हैं। फलों का चुनाव क्षेत्र के आधार पर भिन्न हो सकता है।

फलो की खेती

7. **मशरूम उत्पादन** : व्यवसायिक तौर पर हमारे यहाँ लगभग दस प्रकार की मशरूम का उत्पादन किया जाता है, इनमें बटन मशरूम (*अगेरिकस बाइस्पोरस*), षिटाके मशरूम (*लैन्टीनूला इडोड्स*), आयस्टर या ढिंगरी मशरूम (*प्लूरोटस जातियां*), पराल मशरूम/ पैडीस्ट्रा (वोल्वेरिएला जातियां) तथा दूधिया मशरूम (कैलोसाइवी इन्डिका) हैं। प्रत्येक मशरूम की वृद्वि के लिए तामपान की एक निष्चित सीमा होती है। इनमें से बटन मशरूम व सिटाके मशरूम ठंडी जलवायु में उगते है व इनको उगाने के लिए तापमान 20° से. से कम होना चाहिए। पराल खुम्ब, दूधिया व आयस्टर मशरूम की विभिन्न प्रजातियों को उगाने के लिए तापमान 20–35° से. होता है। बटन मशरूम की खेती केवल शीतकालीन (4–5 महीनों) में की जाती है। ऐसी जलवायु में पराल मशरूम (वोल्वेरिएला जातियां), दूधिया मशरूम (*कैलोसाइवी इन्डिका*) व प्लूरोटस (आयस्टर जातियां) मशरूम आसानी से उगाया जा सकता है।

बटन मशरूम की खेती

दूधिया मशरूम की खेती

धींगरी मशरूम की खेती

8. **मधुमक्खी पालन** : मधुमक्खी से भरे एक बक्से की कीमत लगभग चार हजार रुपए होती है। खेती में मधुमक्खियों की विशेष भूमिका है। वैसे भूमिहीन किसान भाइयों के लिए भी मधुमक्खी पालन एक अच्छा ब्यवसाय है। शहद उत्पादन के अलावा भी इनके कई फायदे हैं। फूलों की पैदावार में इनसे 30–40% और तिलहन–दलहन की पैदावार में लगभग 10–20% की बढ़ोत्तरी हो जाती है। बेहतर परागण के कारण फसलें भी एक ही समय पर पकती हैं। इस क्षेत्र में खादी ग्रामोद्योग एवं कई अन्य संस्थाएं सहायता कर रही हैं।

9. **कृषक परिवार की जरूरतों को पूर्ण करना** : परिवार को भोजन, आहार,चारे, ईंधन रेशे और उर्वरक जैसी बुनियादी जरूरतों को खेत–खलिहानों से ही टिकाऊ आधार पर अधिकतम सीमा तक पूरा करने के लिये विभिन्न घटकों में समन्वय और सृजन करना।

10. **अवशेषों का पुनर्चक्रण**: खेती से प्राप्त होने वाले अपशिष्ट पदार्थों का पुनर्चक्रण कर विभिन्न कार्यों में इस्तेमाल करना।

11. **सामाजिक आवश्यकताओं के लिये सालभर आमदनी**: बिक्री को ध्यान में रखकर पर्याप्त उत्पादन करना और कृषि से सम्बन्धित मधुमक्खी पालन, मशरूम की खेती, प्रसंस्करण व मूल्य संवर्धन, आदि गतिविधियाँ संचालित करके परिवार के लिये सालभर आमदनी करना ताकि परिवार की सामाजिक आवश्यकताओं जैसे, स्वास्थ्य, शिक्षा और अन्य सामाजिक गतिविधियाँ सम्पन्न हो सकें।

इन्ही बातों को ध्यान में रखकर भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा उत्तर भारतीय परिस्थितियों में रहने वाले सीमांत कृषकों हेतु एक एकड़ (0.4 हेक्टेयर) सिंचित भूमि पर एक समन्वित कृषि प्रणाली मॉडल विकसित किया गया है जिसका निम्नलिखित उद्देश्य है–

सब्जियों की खेती

1. किसानों की सुरक्षित आजीविका व संतुलित पोषण सुनिश्चित करना।
2. नियतिम आय व रोज़गार का सृजन करना।
3. मौसम के बदलते परिवेश में मृदा स्वास्थ्य और पर्यावरण को सुदृढ़ करना।

भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद द्वारा निर्देशित विभिन्न खाद्य पदार्थों जैसे– धान्य, दलहन, तिलहन, सब्जी, फल, प्रोटीन आदि को 05 सदस्यीय परिवार की जरूरतों के हिसाब से उत्पादन करने के लिये फसल के क्षेत्रों का आवंटन किया गया जिसका उल्लेख नीचे दी गयी सारणी में किया गया है।

सारणी 1: पाँच सदस्यीय परिवार के लिये भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद द्वारा निर्देशित विभिन्न खाद्य पदार्थों की आवश्यकता तथा उपलब्धता

खाद्य पदार्थ	आवश्यकता (ग्राम प्रति दिन)	आवश्यकता, कि.ग्रा. (05 व्यक्ति प्रति वर्ष)	मॉडल से उपलब्धता (कि.ग्रा. प्रति वर्ष)
धान्य	400	730	731
दाल	80	146	172
तिलहन	30	55	188
सब्जी	200	365	7191
फल	100	183	5361
प्रोटीन	60	110	120 (1486 कि.ग्रा. मशरूम प्रति वर्ष)

आँवला के साथ मूगं की अंतःफसल

मोरिंगा के साथ सरसों की अंतःफसल

समन्वित कृषि प्रणाली मॉडल को बनाने में इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि किसान अपनी जरूरतों की भरपाई ही नहीं बल्कि अधिक से अधिक मुनाफा कमा सकें। उसके लिए उन फसलों का चयन किया गया है जिनका बाजार में उचित और अधिक मूल्य मिल सके जैसे– सब्जी के तौर पर ब्रोकली, लैट्यूस, हरी प्याज आदि। सीमांत किसानों के लिए उद्यानिकी भी बहुत महत्वपूर्ण विकल्प है क्योंकि इसमें 3–5 साल के बाद निरंतर फलों से आय अर्जित होती है। साथ ही साथ दो पेड़ों के बीच में जो जगह बच जाती है उसमें अन्तः फसल के तौर पर सरलतापूर्वक उत्पादन कर सकते हैं। उदाहरणार्थ इस मॉडल में आम, अमरूद, अनार, फालसा व आँवला के बीच में मौसम के हिसाब से पालक, लोबिया, धनिया एवं प्याज आदि कि फसलें ली जा रही है।

इस मॉडल में यह पाया गया कि यदि जिन किसान भाइयों के पास एक एकड़ (0.4 है.) तक भूमि है वो हमारे द्वारा विकसित समन्वित कृषि प्रणाली मॉडल को अपनाकर सालभर में लगभग 2.73 लाख तक शुद्ध आय अर्जित कर सकतें हैं। मशरूम उत्पादन भी इस मॉडल का एक अभिन्न अंग है। इससे ₹ 33,000 सालाना तक शुद्ध आय प्राप्त की जा सकती है।

उक्त मॉडल में यदि पॉली हाउस द्वारा बेमौसम फूल एवं सब्जियाँ जैसे– खीरा, टमाटर, शिमला मिर्च, फूलों आदि को उगाकर 600 मी^{2} क्षेत्रफल से ₹ 1,86,000 की अतिरिक्त आय प्राप्त की जा सकती है। चूँकि इस मॉडल में वर्ष भर विभिन्न फूलों की फसलें उपलब्ध रहती है इसीलिये मधुमक्खीयों के 10 बॉक्स रखकर ₹ 6500 प्रति वर्ष की अतिरिक्त आय प्राप्त की जा सकती है।

सारणी 2: एक एकड़ के समन्वित कृषि प्रणाली मॉडल द्वारा विभिन्न घटकों का आर्थिक विश्लेषण

फसल प्रणाली	शुद्ध क्षेत्रफल (मी^{2})	उत्पादन लागत (₹)	शुद्ध आय (₹)
बेबी कॉर्न–सब्जी मटर–पछेती गेंहू–सूरजमुखी	400	6,000	18,992
लौकी–बंदगोभी–हरी प्याज–पालक	400	7,720	18,080
तोरई–लहसुन–कद्दू	400	6,160	9,440
मक्का–तोरिया–पछेती गेंहू–मूंग	180	1,602	4,731
भिण्डी–ब्रोकली–लोबिया	180	2,538	5,130
मक्का–लैट्युस–लांबिया	180	2,304	5,382
लेबिया–गेंदा–सूरजमुखी	135	1,782	8,703
बेबी कॉर्न–ग्लैडियोलस–मूंग	135	6,797	8,468
पॉलीहाउस–खीरा, टमाटर, शिमला मिर्च, झरबेरा (स्थायी लागत. परिवर्तनशील लागत)	600	1,86,000 (₹ 1,05,000. ₹ 81000)	1,46,250
बगवानी (आम, अमरुद, अनार, किन्नू, पपीता, फालसा, आँवला, करौंदा, नींबू). अंतः फसल	1300	8,200	8,000

मशरूम (स्थायी लागत. परिवर्तनशील लागत)	50	79,000 (₹ 30,000 + ₹ 49,000)	33,000
मधुमक्खी पालन	(10 बॉक्स)	13,200	6,500
कुल लागत	**4000**	**3,21,303**	**2,72,676**

मधुमक्खी पालन

समन्वित कृषि प्रणाली मॉडल के लाभ

1. कृषि के अनेक उपक्रमों के समन्वित उपयोग से टिकाऊ फसल उत्पादन एवं अधिक लाभ प्राप्त होता है।
2. किसानों की घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति के अतिरिक्त कृषक परिवार को संतुलित आहार एवं नियमित रोजगार उपलब्ध होता है।
3. विभिन्न कृषि उपक्रमों के अवशेष, अनुपयुक्त उत्पाद एवं कार्बनिक पदार्थ के पुनः उपयोग द्वारा उर्वरको एवं रसायनों के प्रयोग पर निर्भरता कम होती है तथा भूमि उर्वरा शक्ति में सुधार होता है।
4. वातावरण प्रदूषण में कमी तथा उत्पादन की गुणवत्ता मे वृद्धि होती है।
5. प्राकृतिक आपदाओं जैसे सूखा एवं बाढ इत्यादि के प्रकोप द्वारा हानि कम होती है।
6. कृषि उत्पाद का उचित मूल्य प्राप्त होता है एवं किसानों की सामाजिक व आर्थिक स्थिति में सुधार होता है।

सर्दी के मौसम में दुधारू पशुओं की उचित देखभाल कैसे करें

वी. एस. सोलंकी, प्रदीप कुमार चौधरी एवं जे. पी. एस. डबास
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012

उत्तर भारत में वर्ष के चार महीने नवम्बर, दिसम्बर, जनवरी और फरवरी का समय शरद ऋतु माना जाता है। डेयरी व्यवसाय के लिए यह सुनहरा काल होता है, क्योंकि अधिकतर गायें एवं भैसें इन्हीं महीनों में ब्याती हैं। जो गाय व भैसें अक्तूबर या नवम्बर में ब्याती है, उनके लिए यह समय अधिकतम दूध उत्पादन का होता है। यह काल दुधारू पशुओं, विशेषकर भैसों के प्रजनन कें लिए भी बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि अमूमन भैंस इसी मौसम में गाभिन भी होती हैं। कड़ी सर्दी के कारण इन दिनों में विभिन्न रोगों से ग्रसित होकर नवजात बच्चों की मृत्युदर भी अधिक हो जाती है। इसलिए दुधारू पशुओं से अधिक उत्पादन व अच्छे प्रजनन क्षमता बनाये रखने व बच्चों में मृत्यु दर कम करने के लिए सर्दी के मौसम में पशुओं के रख–रखाव के कुछ विशेष उपाय किये जाने की आवश्यकता होती है।

आहार एवं जल प्रबन्धन

सर्दी के प्रभाव से बचने हेतु दुधारू पशुओं की उर्जा की आवश्यकता बढ़ जाती है। इसे पूरा करने के लिए दुधारू पशुओं को प्रतिदिन 1 किलोग्राम दाना मिश्रण प्रति पशु, उनकी अन्य पोषण आवश्यता के अतिरिक्ति खिलाना चाहिए, जिससे दुधारू पशुओं का दुग्ध उत्पादन बना रहता है। दुधारू व गाभिन पशुओं को अच्छी गुणवत्ता के लिए हरे चारे जैसे बरसीम व जई की भरपेट उपलब्धता के साथ–साथ सूखा चारा जैसे गेहूँ की तूड़ी (कम से कम 2–3 किलोग्राम प्रति पशु प्रतिदिन) भी अवश्य खिलाएं इससे इस मौसम में पशु में अधिक उर्जा बनी रहती है। खनिज–मिश्रण में फॉस्फोरस की मात्रा बढ़ा दें। पशुओं को गीला चारा बिलकुल न दें, अन्यथा अफारा होने की संभावना बढ़ जाती है। जाड़े के दिनों में पशु को हरा चारा जरुर खिलाएं और कम लागत में अधिक दूध पाएं। अत्यधिक दूध देने वाली गायों व भैसों के राशन में फु–फेंट सोयाबीन या बिनौले का इस्तेमाल करके राशन की ऊष्मा सघनता को बढ़ाया जा सकता है, जिससे इन पशुओं का दुग्ध उत्पादन बना रहता है। इन दिनो पशुओं के पीने का पानी अक्सर अधिक ठंडा होता है, जिसे पशु कम मात्रा में पीते हैं। इसलिए यह ध्यान रखा जाए कि पानी का तापमान बहुत कम न हो। सामान्यतः पशु 15–20 डिग्री सेंटीग्रेट पानी के तापमान को अधिक पसंद करते हैं। कोशिश करें कि पशुओं के लिए ताजे पानी की व्यवस्था हो एवं ओवरहेड टैंक के ठन्डे पानी को पशुओं को न पिलाएं। पशु को सप्ताह में दो बार गुड़ जरूर खिलाएं तथा सेंधा नमक भी खिलाएं ताकि पशु की पाचन शक्ति बनी रहे।

आवास प्रबन्धन

वातावरण में धुंध व बारिश के कारण अक्सर पशुओं के बाड़ों के फर्श गीले रहते हैं जिससे पशु ठन्डे में बैठने से कतराते हैं। अतः इस मौसम में अच्छी गुणवत्ता का बिछावन तैयार करें, जिससे कि उनका बिछावन 6 इंच मोटा हो जाए। इस बिछावन को प्रतिदिन बदलने की भी आवश्यकता होती है। रेत या मेट्ट्रेस्स का बिछावन पशुओं के लिए सर्वोत्तम माना गया है क्योंकि इसमें पशु दिन भर में 12–14 घंटे से अधिक आराम करते हैं, जिससे पशुओं की उर्जा क्षय कम होती है। नवजात एवं बढ़ते बछड़े–बछड़ियों को सर्दी व शीत लहर से बचाव की विशेष आवश्यकता होती है। इन्हें रात के समय बंद कमरे या चारों ओर से बंद शेड के अंदर रखना चाहिए पर प्रवेश द्वारा का पर्दा/दरवाजा हल्का खुला रखें जिससे कि हवा आ जा सके। तिरपाल, पालीथिन शीट या खस की टाट/पर्दा का प्रयोग करके पशुओं को तेज हवा से बचाया जा सकता है।शाम के समय ठंडक बढ़ने से पूर्व पशु को अंदर बांधें। सुबह धूप निकलने पर बाहर निकालें।

स्वास्थ्य प्रबन्धन

ठण्ड में पैदा होने वाले बछड़े–बछड़ियों के शरीर को बोरी, पुआल आदि से रगड़ कर साफ करें, जिससे उनके शरीर को गर्मी मिलती रहें और रक्तसंचार भी बढ़े। ठण्ड में बछड़े–बछड़ियों का विशेष ध्यान रखे, जिससे कि उनको सफेद दस्त, निमोनिया आदि रोगों से बचाया जा सके। पशुघर को चारों तरफ से ढक कर रखने से अधिक नमी बनती है, जिससे रोग जनक कीटाणु के बढ़ने की संभावना होती है। ध्यान रहे, कि छोटे बच्चों के बाड़ों के अदंर का तापमान 8 –10 डिग्री सेंटीग्रेड से कम न हो। यदि आवश्यक समझें, तो रात के समय इन शेडों में हीटर का प्रयोग भी किया जा सकता है। बछड़े–बछड़ियों को दिन के समय बाहर धूप में रखना चाहिए तथा कुछ समय के लिए उन्हें खुला छोड़ दें, ताकि वे दौड़–भाग कर स्फूतिवान हो जाएँ। अधिकतर पशु पालक सर्दियों में रात के समय अपने पशुओं को बंद कमरे में बांध कर रखते हैं और सभी दरवाजे खिड़कियों बद कर देते हैं, जिससे कमरे के अंदर का तापमान काफी बढ़ जाता है उसमें कई दूषित गैसें भी इकट्ठी हो जाती है,जो पशु के स्वास्थ्य को प्रभावित करती है। अतः ध्यान रखें कि दरवाजे–खिड़कियाँ पूर्णतयः बंद न हो। अत्यधिक ठण्ड में पशुओं को नहलाएं नहीं, केवल उनकी ब्रस से सफाई करें, जिससे की पशुओं के शरीर से गोबर, मिट्टी आदि साफ हो जाएं। सर्दियों के मौसम में पशुओं व छोटे बछड़े–बछड़ियों को दिन में धुप के समय ताजे/गुनगुने पानी से ही नहलाएं। अधिक सर्दी के दिनों में दुधारू पशुओं के दूध निकालने से पहले केवल पशु के पिछवाड़े, अयन व थनों को अच्छी प्रकार से गुनगूने या ताजे पानी से धोएं। ठंडे पानी से थनों को धोने से दूध उतरना/लेट–डाउन अच्छी प्रकार से नहीं होता और दूध दोहन पूर्ण रूप से नहीं हो पाता। इस मौसम में अधिकतर दुधारू पशुओं के थनों में दरारें पड़ जाती है, ऐसा होने पर दूध निकालने के बाद पशुओं के थनों पर कोई चिकानी युक्त/एंटीसेप्टिक क्रीम अवश्य लगायें अन्यथा थनैला रोग होने का खतरा बढ़ जाता है। दूध दुहने के तुरंत बाद पशु का थन छिद्र खुला रहता है जो थनैला रोग का कारक बन सकता है, इसलिए पशु को दूध दुहने के तुरंत बाद खाने के लिए कुछ दे देना चाहिए जिससे कि वह लगभग आधे घंटे तक बैठे नहीं, ताकि उनका थनछिद्र बंद हो जाए, बीमारी का अंदेशा होने पर तुरंत चिकित्सक के परामर्श अनुसार उपचार दिलाएं।

अफाराः ठंड के मौसम में पशुओं को जरूरत से ज्यादा दलहनी हरा चारा जैसे बरसीम व अधिक मात्रा में अन्न तथा बचा हुआ आटा व बासी भोजन खिलाने के कारण यह रोग होता है। इसमें जानवर के पेट में गैस बन जाती है। बायीं कोख फूल जाती है।

निमोनियाः दूषित वातावरण व बंद कमरे में पशुओं को रखने के कारण तथा संक्रमण से यह रोग होता है। रोग ग्रसित पशुओं की आंख व नाक से पानी गिरने लगता है।

ठण्ड लगनाः इससे प्रभावित पशु को नाक व आंख से पानी आना, भूख कम लगना, शरीर के रोंएं खड़े हो जाना आदि लक्षण आते हैं। उपचार के लिए एक बाल्टी खौलते पानी के ऊपर सूखी घास रख दें। रोगी पशु के चेहरे को बोरे या मोटे चादर से ऐसे ढ़के कि नाक व मुंह खुला रहे। फिर खौलते पानी भरे बाल्टी पर रखी घास पर तारपीन का तेल बूंद–बूंद कर गिराएं। भाप लगने से पशु को आराम मिलेगा।

ठंड के मौसम में प्रायः पशुओं को दस्त की शिकायत होती है। पशुओं को दस्त होने पर यदि गायों को थनैला रोग हो तो, जिस थन में यह रोग हो उस थन का दूध बछड़ों को कभी पिलाना नहीं चाहिए।

दुधारू गायों से अधिक दूध लेने के लिए उन्हें मिनरल मिक्सचर 50 ग्राम प्रति दिन ,प्रति पशु चारे में मिला कर दें । बछड़े एवं बाछियों की अच्छी बढ़ोत्तरी के लिए उन्हें साफ–सुथरी एवं सूखी जगह पर रखना जरूरी है।

सर्दी के वातावरण में नमी के कारण पशुओं में खुरपका मुंहपका तथा गलाघोटू जैसी बीमारियों से बचाव के लिए समय पर टीकाकरण कराऐ।

सर्दियों में बछड़े–बछड़ियों में होने वाली प्रमुख बीमारियां और उनका समाधान

नवजात पशु की सही तरह से देखभाल करना अति आवश्यक हैं यदि पशुपालक कुछ महत्वपूर्ण बीमारियों का

ध्यान रखें तो उसका नवजात पशु एकदम स्वस्थ रह सकता हैं। नवजात पशु (बछडां) में मुख्यतः तीन बीमारिया पाई जाती हैं जिनका समय रहते उपचार ना किया जाए तो नवजात पशु की मृत्यु भी हो सकती हैं। पशुपालक कुछ सावधानिया रखते हुए अपने पशुओं को इन बीमारियों के प्रभाव से बचाकर रख सकते हैं।

1. बछड़ों का न्यूमोनिया
2. बछड़ों का उजला–पीला दस्त
3. नाभि रोग

बछडों का न्यूमोनिया रोगः

बछड़ों में न्यूमोनिया नामक बीमारी वायरस तथा बैक्टीरिया द्वारा उत्पन्न होती है। बछड़ों में वायरल तथा बैक्टीरियल न्यूमोनिया 2–5 माह की उम्र में ज्यादा होता है, लेकिन जन्म के बाद पहले सप्ताह से लेकर कभी–कभी 8–12 माह की उम्र के बछड़ों में यह रोग हो जाता है। बछड़ों में न्यूमोनिया सर्दी के मौसम में अधिक हातेा हैं, क्योकि पशपुालक के घर पर बछड़ों को सर्दी एवं ठंडी हवाओं से बचने के लिए पर्याप्त व्यवस्था नहीं होती हैं।

रोग का कारणः

बछडो में न्यूमोनिया नामक रोग वायरस, बैक्टीरिया, मइक्रोप्लाज्मा आदि की वजह से होता हैं। न्यूमोनिया रोगी बछड़ों के सीधे संपर्क में आने एवं हवा द्वारा भी रोगी बछड़ों से स्वस्थ बछड़ों में यह रोग संक्रमण द्वारा फैल जाता हैं।

रोग के लक्षण

- न्यूमोनिया रोग से ग्रस्त बछडे के शरीर का तापमान सामान्य से अधिक (105–107 डिग्री फारेनाइट) हो जाता हैं।
- सांस दर एवं नाड़ी दर भी बढ़ जाती है।
- प्रभावित बछड़े की साँस दर बढने के साथ ही पशु द्वारा साँस लेते समय कर्कश ध्वनि आती हैं।
- प्रभावित बछड़े के नाक से हल्का गाढ़ा मवाद मिला हुआ स्त्राव आता हैं।
- न्यूमोनिया ग्रस्त बछडे साँस लेने में तकलीफ होने के कारण मुँह खोलकर सास लेते हैं।
- यदि बछड़े को न्यूमोनिया वॉयरस के द्वारा होता है तो बछड़े को रुक–रुक कर खासी भी हो सकती है।
- एकाएक तेज न्यूमोनिया मे बछड़े की कुछ ही घंटो में मृत्यु हो जाती है जबकि हल्के न्यूमोनिया में 4–7 दिन के उपचार के बाद पशु ठीक हो जाता हैं।

बछड़ों में न्यूमोनिया रोग की रोकथाम एवं उपचार

- पशुपालक पशुशाला को साफ–सुथरा रखें तथा बछड़ो को समूह में ना रखें। सर्दी का मौसम होने पर बछड़ों को ऐसी जगह पर रखे जहां सर्दी व ठंडी हवाओं का प्रकोप कम हो।
- पशुपालक बछडे के जन्म के बाद में कुछ माह तक बछड़े के खानपान तथा रख–रखाव का विशेष ध्यान रखें।
- बछड़ों में न्यूमोनिया रोग होने पर इसके लिए कोई विशेष वैक्सीन (टीका) उपलब्ध नहीं है।
- वॉयरसजनित न्यूमोनिया रोग में एंटीबायोटिक्स (प्रतिजैविक) दवाईयों का कोई विशेष प्रभाव नहीं होता है, लेकिन बैक्टीरियल न्यूमोनिया में प्रभावित बछड़ों को एंटीबायोटिक्स (प्रतिजैविक) दवाईयां देनी चाहिए।
- बछड़ों को पेट के कीड़े मारने की दवाईया (कृमिनाशक) भी देनी चाहिए।
- इंजेक्शन टेट्रासाइक्लिन एवं क्लोरएमफेनिकोल देने चाहिए।
- न्यूमोनिया रोग का उपचार कम से कम पाँच दिन तक तो करना ही चाहिए।

2. बछड़ों का उजला–पीला दस्त रोगः

नवजात बछड़ों में उजला–पीला दस्त रोग एक महत्वपूर्ण रोग है। बछड़ों में यह बीमारी ई. कोलाई नामक बैक्टीरिया के संक्रमण के कारण होती है। इस बीमारी में बछड़ा शरीर से काफी कमजोर हो जाता है। इस रोग में बछड़ों को तेज पतले, उजले–पीले दस्त होते हैं। शरीर में पानी की कमी हो जाती हैं तथा बछडा काफी कमजोर हो जाता हैं। समय पर ईलाज न करवाने पर ज्यादातर बछड़े मौत के शिकार हो जाते हैं। सामान्यतः यह रोग 1 से 15

दिन की उम्र के बछड़ों में अधिक होता है। गाय के बछड़ों में यह बीमारी जन्म के कुछ सप्ताह में ही हो सकती है।

ई. कोलाई नामक बैक्टीरिया वातावरण में हर जगह पाए जात हैं। जो सेप्टिसीमिया व दस्त के लिए जिम्मदोर होते हैं। यह रोग स्वस्थ पशुओं में प्रभावित पशुओं के गोबर से दुषित आहार व पानी के उपयोग से फैलता हैं। ई. कोलाई बैक्टीरिया आहारनाल में पहुंचकर टाक्सिनय जहर उत्पन्न करते है।

रोग के लक्षण :

- रोगग्रस्त पशु की म्यूकस मेम्ब्रेन (श्लेष्मा झिल्ली) सफेद–पीली पड़ जाती हैं।
- बछड़ा दूध पीना बिल्कुल बंद कर देता है।
- नवजात पशु काफी सुस्त हो जाता है व शरीर का तापमान व नाडी दर बढ़ जाती हैं।
- नवजात पशु में कंपकंपाहट व आखों का घुम जाना।
- पतले–चिकने तथा सफेद–पीले दस्त आते हैं।
- बछड़ों को बार–बार दस्त लगने से पेट दर्द, कमर का मुड़ जाना आदि लक्षण दिखाई देते हैं।
- रोगग्रस्त बछडों का समय रहते ईलाज ना करवाने पर 3–5 दिन में ही मृत्यु हो जाती है।

रोग की रोकथाम व उपचारः

- पशुशाला को साफ–सुथरा रखना चाहिए।
- नवजात बछडों को खीस पिलाने से उनकी रोगर–प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है इसलिए बछड़ों को 50 मिली./किग्रा. शरीर भार के हिसाब से जन्म के आधे से एक घंटे के अन्दर खीस जरूर पिलाना चाहिए।
- पशपुालक पशुघर में बछड़ों को एक साथ समूह में न रखें
- इस बीमारी के उपचार के लिए एंटीबायोटिक्स या प्रतिजैविक दवाईयों का उपयोग करने से पूर्व गोबर की जांच करवाएं।
- एंटीबायोटिक्स (प्रतिजैविक) दवाइयां जैसे– स्ट्रेप्टोमायसिन टेट्रासायकलिन, नाइट्रोफयुराजोन इत्यादि।

3. बछड़ों में नाभि रोगः

नवजात बछड़ों में सफाई की कमी से नाभि में मवाद पड़ जाती है। नाभि चिपचिपी नजर आती है साथ ही उसमें सुजन व दर्द होने लगता है। बछड़ा सुस्त पड़ जाता है एवं माँ का दुध नहीं पीता है। इसकी रोकथाम के लिए नाभि को पीपी.य लाल दवा से साफ करके टिंनचर आयोडिन तब तक लगानी चाहिए जब तक कि नाभि सूख न जाए।

रोग के कारणः

- नाभि रोग कई प्रकार के बैक्टीरिया के कारण हाते हैं। जसै– स्ट्रेप्टोकोकस, स्टेफाइलोकोकस, ई. कोलाई, साल्मोनेल्लोसिस आदि।
- जो नवजात गर्भकाल के पूरे समय बाद पैदा होते हैं उनमे यह रोग कम होता हैं जबकि गर्भकाल से पूर्व जन्म लेने वाले बछड़ों में यह रोग ज्यादा होता है।
- गर्भनाल को गंदे चाकू से काटना, एंटीसेप्टिक का उपयोग ना करना, अन्य पशु व स्वयं बछड़े के द्वारा नाल को चूस लेने की वजह से भी संक्रमण हो जाता हैं।

रोग के लक्षणः

- प्रभावित पशु की नाभि में संक्रमण के कारण सूजन आने से नाल आकार में बड़ी हो जाती है।
- कभी–कभी बछड़े–बछड़ियों में इस अवस्था में अम्बलिकल हर्निया की समस्या सामने आती हैं।
- कुछ बिशेष बैक्टीरिया पैरों के जोड़ों में सूजन पैदा करते हैं, जिससे कभी–कभी जॉइंट कैप्सूल फट जाता हैं।
- यदि प्रभावित पशु का समय पर ईलाज ना करवाया जाएं तो जोड़ों में फाइब्रोसिस तक हो जाता है।
- अगर संक्रमण सिर्फ अंबलिकस में हो तथा पशु का समय पर ईलाज करवाया जाए तो पशु को बचाया जा सकता है, लेकिन यदि समस्या जोड़ों में हो एवं मवाद भी हो जाएं तो समस्या गंभीर हो जाती है। इसलिए जितना जल्दी हो सके रोगी पशु का ईलाज करवाना चाहिए।
- समय रहते रोगी पशु का उपचार नहीं करवाने पर पशु शरीर में टाक्सिमिया व सेप्टिसीमिया के कारण मृत्यु हो जाती हैं।

उपचारः

- पशु का परीक्षण अच्छी तरह से करना चाहिए कि अंबलिकस में संक्रमण हैं या अंबलिकल हर्निया।
- अबंलिकल हनिर्या होने की स्थिति में अबंलिकस एब्सेस को ओपन नहीं करना चाहिए बल्कि इस स्थिति में हर्निया का उपचार करना चाहिए।
- हर्निया नहीं होने की स्थिति में अंबलिकस एब्सेस को नाल के नीचे से क्रिस–क्रास चीरा लगाकर मवाद को बाहर निकालें। इसके बाद लाल दवा के हल्के घोल से धोकर टिंनचर आयोडिन लगाना चाहिए।
- जोड़ों में दर्द होने पर एंटीबायोटिक्स (प्रतिजैविक) दवाइयों का उपयोग करें।

रोकथामः

- जहाँ नवजात पशु को रखा जाता है, वहा की अच्छे से साफ–सफाई करनी चाहिए।
- अबंलिकस नाल को काटते समय साफ व संक्रमण रहित चाकू का उपयोग करें व उसके बाद टिंनचर आयोडीन लगाए।

इस तरह हम कुछ छोटी–छोटी लेकिन महत्वपूर्ण बातों का ध्यान रखते हुए व सावधानियां रखकर नवजात पशु को बीमारियों से बचा सकते हैं।

उपरोक्त सभी बातों के अलावा निम्नांकित बातों का भी ध्यान रखें :

- पशुओं को खुली जगह में न रखें, ढके स्थानों में रखे।
- रोशनदान, दरवाजों व खिड़कियों को टाटऔर बोरे से ढंक दें।
- पशुशाला में गोबर और मूत्र निकास की उचित व्यवस्था करें ताकि जल जमाव न हो पाए।
- पशुशाला को नमीऔर सीलन से बचाएं और ऐसी व्यवस्था करें कि सूर्य की रोशनी पशुशाला में देर तक रहे।
- बासी पानी पशुओं को न पिलाए।
- बिछावन में पुआल का प्रयोग करें।
- पशुओं को जूट के बोरे को ऐसे पहनाएं जिससे वे खिसके नहीं।
- गर्मी के लिए पशुओं के पास अलाव जला के रखें।
- नवजात पशु को खीस जरूर पिलाएं, इससे बीमारी से लडने की क्षमता में वृद्धि होती है और नवजात पशुओं की बढ़ोतरी भी तेजी से होती है ।
- प्रसव के बाद मां को ठंडा पानी न पिलाकर गुनगुना पानी पिलाएं।
- गर्भित पशु का विशेष ध्यान रखें व प्रसव में जच्चा–बच्चा को ढके हुए स्थान में बिछावन पर रखकर ठंड से बचाव करें।
- बिछावन समय–समय पर बदलते रहे।
- अलाव जलाएं पर पशु की पहुंच से दूर रखें। इसके लिए पशु के गले की रस्सी छोटी बांधे ताकि पशु अलाव तक न पहुंच सके।
- ठंड से प्रभावित पशु के शरीर में कपकपी, बुखार के लक्षण होते हैं तो तत्काल निकटवर्ती पशु चिकित्सक को दिखाएं।

पशुओं मे परजीवी रोग एवं उनके उपचार

रोग एवं परजीवी	मध्यवर्ती परपोषी	परपोषी	प्रमुख लक्षण	उपचार
यकृत कृमि (लीवर फ्लूक)	जलीय घोंघा	गाय, भैंस, भेड़, बकरी	भूख की कमी, कब्जियत तथा दस्त, घेंघा फूलना	ऑक्सीक्लोजानाइड– 10 से 15 मिग्रा. प्रति किलोग्राम शारीरिक वजन हेक्साक्लोरोइयेन– 300 मिग्रा. प्रति किलोग्राम शारीरिक वजन रुफोक्सानाइड
छेरा रोग (एम्फीस्टोमिओसिस)	जलीय घोंघा	गाय, भैंस, भेड़, बकरी	भूख की कमी, छेरा दस्त एवं घेंघा फूलना	उपरोक्त
कृमि रोग (गोल कृमि, फीता कृमि आदि)	–	पालतू पशु जैसे गाय, भैंस, भेड़, बकरी, घोड़ा, सूकर, मुर्गी आदि	दस्त	पिपराजीन कम्पाउंड 66 मिग्रा. प्रति किलोग्रा. शारीरिक वजन लेवामिसोल–7.5 मिग्रा. प्रति किलोग्राम शारीरिक वजन मोरेन्टल टारटरेट–10 मिग्रा. प्रति किलोग्राम शारीरिक वजन

हुक कृमि	–	कुत्ता	कमजोरी, रक्तअल्पता खून तथा आँव मिला मल	टेट्रामिसोल 15–20 मिग्रा. प्रति किग्रा. शारीरिक वजन की दर से खिलाना है। मेबेन्डाजेला 40–50 मिग्रा. प्रति ग्रा. शारीरिक वजन की दर से खिलाना है।
कॉक्सिडियोसिस	–	गाय, भैंस, बकरी, घोड़ा, सूकर, मुर्गा	भूख की कमी, छेरा, खूनी दस्त	गाय, भैंस, भेड़, बकरी को अम्प्रोलियम 20–40 मिग्रा. प्रति किलो वजन 4–5 दिनों तक मुर्गियों को सल्फाडाइमीडीन (0.2:) या सल्फाक्वलीनोक्सलीन (0.5:) 5–7 दिनों तक पीने के पानी में
थेलेरियोसिस	अप्रैल या चमोकन (टीक्स)	संकर एवं उन्नत नस्ल की गाय	तेज बुखार (108^0 फारेनाइट तक) लिम्फ ग्रथियों में सूजन रक्त अल्पता, गर्भपात, खूनी दस्त	टेट्रासाइक्लिन–10 मिग्रा. प्रति किलोग्राम शारीरिक वजन ब्यूटालेक्स (बूपारवक्विनोन) –2.5 मिग्रा. प्रति किलोग्राम मांस में सूई द्वारा
बेबेसियोसिस	अठेला या चमोकन (टीक्स)	गाय, घोड़ा, कुत्ता, भेड़ एवं बकरी	तेज बुखार (106^0 फारेनाइट तक) लाल पेशाब एवं रक्त अल्पता	बेरेनील–2 से 3.5 मिग्रा. प्रति किलोग्रा. शारीरिक वजन ट्रिपानब्लू–1 प्रतिशत घोल, कुत्ते में 5 से 10 सी.सी. एवं गाय में 50 से 100 सी.सी. सूई द्वारा खून में।
ट्रिप्नोसोमिएसिस (सर्रा रोग)	रक्त चूसक मक्खी	मनुष्य, गाय, भैंस, भेड़, बकरी, घोड़ा, ऊँट, कुत्ता	तेज बुखार, भूख की कमी रुक–रुक कर पेशाब करना,चक्कर आना।	बेरेनील–3.5 मिग्रा. प्रति किलोग्राम शारीरिक वजन सूई द्वारा चमड़े में या मांस में। एंट्रीसाइड प्रोसाल्ट 7.5 मिग्रा. प्रति किग्रा. वजन के अनुसार सलाइन जल में घोल बनाकर चमड़े के नीचे सूई द्वारा।
खाज या स्कैबीज	–	बकरी, कुत्ता, सूकर	चमड़े में लालिमा और सूजन बाल झड़ना, खुजलाहट	आइभाभेकटीन 200 माइक्रोग्राम प्रति किग्रा. शारीरिक वजन के अनुसार चमड़े में सूई द्वारा। नीम़करंज तेल कपूर तथा गंधक के मिश्रण की चमड़े पर मालिश।

ठंड के मौसम में पशुपालन करते समय पशुओं पर कुप्रभाव न पड़े और उत्पादन न गिरे इसके लिए पशुपालकों को अपने पशुओं की देखभाल ऊपर दिए निर्देशों के अनुसार करना बहुत जरूरी है। ठंड के मौसम में पशुओं की वैसे ही देखभाल करें जैसे हम लोग अपनी करते हैं। उनके खाने–पीने से लेकर उनके रहने के लिए अच्छा प्रबंध करें ताकि वो बीमार न पड़ें और उनके दूध उत्पादन पर प्रभाव न पड़े। खासकर नवजात तथा छह माह तक के बच्चों का विशेष देखभाल करें।

लेखकों से...

1. अपने तकनीकी एवं लोकप्रिय लेख हिन्दी में टाइप करवाकर भेजें।
2. रचना पृष्ठ के एक ओर उचित हाशिया और पंक्तियों के बीच स्थान छोड़कर सम्पादक, प्रसार दूत के पास यथा समय भेजें।
3. वर्ष 2015 से प्रसार दूत का अंक त्रैमासिक किया गया है। लेखकों से अनुरोध है कि प्रथम अंक के लिए प्रकाशनार्थ सामग्री 30 जनवरी, द्वितीय अंक 30 अप्रैल, तृतीय अंक 31 जुलाई तथा चतुर्थ अंक 31 अक्तूबर तक अवश्य भेज दें।
4. तकनीकी पर दी गई जानकारी की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी। रचना को प्रकाशित करने या न करने का पूरा अधिकार सम्पादक मंडल को होगा।

प्रसार दूत का प्रकाशन समय

प्रथम अंक मार्च, द्वितीय अंक जून, तृतीय अंक सितम्बर और चतुर्थ अंक दिसम्बर में प्रकाशित होगा।

वार्षिक शुल्क 80/- मनीऑर्डर द्वारा भेजें।

शुल्क और सामग्री भेजने एवं पत्रिका मंगवाने का पता

प्रभारी अधिकारी

कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)

भा.कृ.अ.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

फोन: 011-25841670, 25846233, 25841039, 25803600

पूसा एग्रीकॉम: 1800 11 8989 (नि:शुल्क)

पाठकों से...

प्रसार दूत में प्रकाशित किसी भी तकनीकी के विषय में अंश और समाधान हेतु आपके पत्रों का स्वागत है। विषयों पर अधिक जानकारी के लिए लेखक से सीधे भी सम्पर्क कर सकते हैं।

किसानों से...

यदि आपकी खेती व पशु-पालन संबंधी कोई विशेष समस्या है, तो लिखकर भेजें। हम प्रसार दूत के माध्यम से उसका समाधान आप तक पहुंचाएंगे।

अन्त में ...

आपकी खुशहाली ही हमारी सफलता है।

प्रो. एम. एस. स्वामीनाथन पुस्तकालय

निदेशक, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 110012 द्वारा प्रकाशित तथा

मैसर्स एम एस प्रिंटर्स, सी-108/1 बैक साइड नारायणा इंडस्ट्रीयल एरिया, फेस-1, नई दिल्ली-110028, द्वारा मुद्रित

फोन: 7838075335, 9899355565, 9899355405,